गंगा-पुस्तकमाला का १४५वाँ पुष्प

ग़दर के पत्र

चतुरसेन शास्त्री

५

ग़दर के पत्र

पत्र नं० १

सेवा में—जॉर्ज कार्निक्वारेंस

सतलज की पश्चिमी रियासतों के कमिश्नर

ऊपरी कैंप, देहली

१५ जून, १८५७

प्रिय वारेंस !

मैं यहाँ से अभी तक देहली की तरफ़ देख रहा हूँ। और, हर घड़ी मुझे यह उम्मीद होती है कि हमारी तोपें क़िले की दीवारों की तोपों को शांत कर सकती और मुझे इस योग्य बना सकती हैं कि सफलता को उपयुक्त आशा के साथ निकट पहुँचकर इस स्थान पर अधिकार कर लूँ, परंतु इन बाग़ियों की तोपों की ज्यादती मेरे साहस को भंग कर रही है। बस, अब (जैसी कि स्थिति है) मेरे सामने और मुझे किसी वस्तु का भय नहीं। सिवा इसके और कोई उपाय नहीं कि मैं एक अचानक और प्रबल आक्रमण कर दूँ,

किंतु इन चाँदनी रातों* में यह काम सरल नहीं प्रतीत होता।

मैं केवल छ तोपों का प्रबंध कर सका हूँ। और, इनके चलानेवाले भी बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। ये विद्रोही पशु लगभग रोज़ बाहर निकलते हैं। दो दफ़ा तो मैंने उन्हें पूरे नुक़सान के साथ वापस भेजा है, परंतु मेरे सिपाही छीजते जाते हैं, इसलिये मुझे इनकी बहुत कुछ हिम्मत बढ़ानी पड़ती है। असल बात यह है कि ८वीं तारीख़ से लेकर अब तक ऊपर-नीचे छोटी-छोटी लड़ाइयाँ होती रहीं। वे आठवीं तारीख़ के बाद से अपनी हानि का अनुमान दो हज़ार से अधिक करते हैं। पर, मेरा विश्वास है, इसमें वह संख्या नहीं जोड़ी गई है, जिसका पता नहीं चलता।

जब आप घृणास्पद ढंग से देहली की फसीलों का ज़िक्र कर रहे थे, तो मैं नहीं समझ सकता कि इससे आप लोगों का अभिप्राय क्या था। २४ पौंड वज़नी गोला फेंकनेवाली तोपें बाग़ियों के बुर्जों में हर जगह चढ़ी हुई हैं, और इनके पीछे लगभग ७ हज़ार सिपाही भी मौजूद हैं। ऐसी हालत में प्रवेश सरल नहीं। और, मेरे इंजीनियरों का कहना है कि हम बाक़ायदा खाइयाँ बनाकर क़िले तक नहीं पहुँच सकते।

---

* चाँदनी रातों से शुक्ल-पक्ष की रातों से अभिप्राय नहीं है, बल्कि इससे वे रातें समझना चाहिए, जो मशालों द्वारा प्रकाशित हो उठी थीं।

मेरे तोपखानेवालों का भी यह कहना है कि हम इन तोपों को, जो मेरे पास हैं, नहीं चला सकते। अब मेरे पास एक ही उपाय रह गया है, और इसे भी पूरी तरह आज़मा लेना चाहिए। यदि इसमें सफलता न हुई, तो मेरे पास कोई रक्षित सेना न रहेगी। और, यह (मानो) सर्व-नाश के चिह्न होंगे। हिंदुस्तान के लिये कौन-सी बात कम हानिकर है—इमदादी फ़ौज (कुमुक) की प्रतीक्षा में समय नष्ट किया जाय, या असफलता का भय सह लिया जाय?

विद्रोही दूसरे आक्रमण की तैयारी कर रहे हैं, इसलिये मैं जल्दी ही इस पत्र को ख़तम कर रहा हूँ। मिस्टर लारेंस से मेरा सलाम कह दीजिए।

विश्वासी—

एच्० एच्० बर्नार्ड

(जनरल हेनरी बर्नार्ड, कमांडर-इन-चीफ़)

पत्र नं० २

(यह पत्र जनरल सर हेनरी बर्नार्ड ने जॉर्ज कार्निकबारेंस के नाम १७ जून, सन् ५७ को भेजा था।)

प्रिय बारेंस!

किसी असाधारण प्रकार के अचल व्यक्ति ने मेरी बर्साती ग़ायब कर दी है। यह मेरे पास केवल एक ही थी। हमारे बँगले में दो संदूक़ हैं, जो मामूली देवदार की लकड़ी के हैं, और इनके अंदर टीन मढ़ा है। सबसे छोटे में एक बहुत बड़ा भूरे रंग का रेजीमेंटल कोट (रक्खा हुआ) है। अगर आप कृपा करके बक्स खोलकर कोट मेरे पास भेज दें, तो बड़ा अनुग्रह होगा।

अभी हम दिल्ली के सामने पड़े हुए हैं, या जैसा किसी ने हँसी-रूप में कहा है—"हम अभी तक देहली के पीछे हैं, जो फ़सीलें मैदानी तोपों के द्वारा तोड़ी जानेवाली थीं, १८ पौंड वज़नी गोलों के मुक़ाबले में ज्यों-की-त्यों वैसी ही मज़बूती से क़ायम हैं। हम महल पर गोलाबारी करते रहते हैं, और अभी तक किए जा रहे हैं। राइफ़ल्ड पल्टन के एक गोरे ने एक हिंदोस्तानी सिपाही को बंदूक़ का निशाना बनाया, और उसकी ८४

अशर्फ़ियाँ भी चुरा लीं। मुझे आशा है, अंगूर नियमानुसार*
पक रहे हैं।

उन्होंने हम पर कोई आक्रमण नहीं किया। इसलिये मेरी धारणा है कि वे आज आक्रमण करेंगे। और, फिर एक और चपत खायँगे।

हडसन को जुकाम हो गया है, कुछ हलकी सूजन भी है। पर आज कुछ ठीक है। ग्रेट हेड के पुत्र को भी हरारत हो गई थी, किंतु अब अच्छा है। मेरे पुत्र को, जो चाँदमारी के स्कूल में शिक्षा पा रहा था, अब गाइड्ज़ में भर्ती कर दिया गया है।

एक महावत कमसरियट के सर्वोत्तम हाथी को बादशाह की सेवा में भेंट देने के लिये कल दिल्ली ले गया था। कर्ज़न तुम्हें सलाम कहता है, और कहता है कि लोग हमारी पूजा करने अभी तक नहीं आए।

जनरल रीड अच्छे हैं। और, इसलिये वह अब लौटने की अपनी यात्रा प्रारंभ करेंगे।

मेरी इच्छा है कि वह मेरे जनरल को—इस मोर्चे के ख़तम हो जाने के बाद—मदरास भेज दें। इसलिये कि जनरल ग्रांट के मातहत ब्रिगेडियर की पोज़ीशन में रहकर काम करना

---

* इससे संभवतः यह अभिप्राय है कि घटनाएँ आशा के अनुरूप घटित हो रही हैं।

किसी तरह इनकी शान के योग्य न होगा। खैर, हम देख लेंगे।

तुम्हारा बहुत विश्वासी—
एच्० बर्नार्ड

पत्र नं० २

(यह पत्र जनरल सर हेनरी बर्नार्ड कमांडर-इन-चीफ़ ने जॉर्ज कार्निकवारेंस के नाम १७ जून, ५७ को भेजा था।)

प्रिय वारेंस !

मैंने अभी आपकी चिट्ठी पढ़ी। इससे मुझे कुछ तसल्ली हुई, इसलिये कि आपने इस तजवीज़ को नापसंद किया कि मैं अपनी अल्प सेना लेकर देहली में दाख़िल होने का ख़तरनाक तजुरबा करूँ। इस तरह से कि मेरा कैंप, हस्पताल और कमसरियट तथा ख़ज़ाना। सारांश यह कि मेरी सेना का सारा सामान अरक्षित दशा में पड़ा रह जाय।

मैं स्वीकार करता हूँ कि जो पोलिटिकल सलाहकार मेरे साथ काम कर रहे हैं, उनकी सलाह से प्रभावित होकर मैं अचानक और ज़बर्दस्त आक्रमण करने के प्रस्ताव पर सहमत हो गया था, जिसमें ऊपर वर्णित सारी बातों की जोखिम साथ थी। केवल सौभाग्य से ही यह तजवीज़ अमल में आने से रुक गई। संभव है, ईश्वर कृपा करे, इसलिये जो कुछ मैंने सुना है, और जिन साहबों से सम्मति करना मेरा कर्तव्य था, उनकी रायों पर विचार करने के बाद मुझे यह विश्वास हो गया कि विजय उतनी ही भयानक सिद्ध होती, जितनी कि हार।

जो फ़ौज दो हज़ार सिपाहियों से भी कम हो, जो देहली-जैसे विस्तृत शहर में फैली हुई हो, वह कोई ऊँचे दर्जे की सैनिक शक्ति नहीं रह सकती थी, और इस दग़ाबाज़ी के होते हुए जिसने हमें चारो तरफ़ से घेर रक्खा है, मेरी युद्ध-सामग्री की क्या दशा होती ? (यदि सार्वजनिक हल्ला कर दिया जाता) ।

इस विचार से कि फ़ौजी क़ानून मेरा पथ-प्रदर्शक है, इस बखेड़े का मुक़ाबला करने के लिये—जो इस आधार पर उठेगा कि हम देहली के सामने क्यों बेकार पड़े हुए हैं—मानसिक बल की बड़ी आवश्यकता है । फिर भी मैं केवल सर्वोत्तम स्वार्थ प्राप्त करने का प्रयत्न कर सकता हूँ । चोट करने के लिये मैं उचित अवसर की प्रतीक्षा में हूँ । मि० ग्रेट हेड ने जो महत्त्व-पूर्ण योजना पेश की थी, वह यह थी कि दुआबे पर अधिकार जमा लिया जाय । देहली से अलीगढ़ फ़ौजें भेजी जायँ, परंतु मैं यदि नगर में भी होता, तो भी ऐसा नहीं कर सकता था । क़िला और सलीमगढ़ अभी तक मेरे नेत्रों के सामने हैं, और नगर पर अधिकृत रहना तथा दो हज़ार से कम सिपाहियों की सहायता से इन (स्थानों) पर आक्रमण करना, यह अर्थ रखता है कि मैं एक आदमी को भी अलग न करूँ । हालत यह है कि देहली तोपों से पटी पड़ी है, और वहाँ वे सिपाही मुक़ीम हैं, जो यद्यपि खुले मैदान में कोई महत्त्व नहीं रखते, पर पत्थर की

फसील के पीछे रहकर कुछ-न-कुछ कारगुज़ारी अवश्य दिखा सकते हैं। और, जो भारी तोपों का भी कुछ उपयोग जानते हैं (यही कारण है कि शनिवार के दिन गोला-बारी की दुरुस्ती से हमें नीचा दिखा दिया)। बस, अंबालेवाली फ़ौज और छ तोपें रखनेवाली दो पल्टनें इस पर कभी अपना अधिकार नहीं जमा सकतीं, और इसकी वर्तमान शक्ति का बहुत ही कम अनुमान किया गया है।

बावली की सराय पर हम एक पड़ाव मार चुके हैं। जहाँ विद्रोही उस समय तक हमारा भयानक सामना करते रहे, जब तक कि उनकी तोपें उनके अधीन रहीं। इसके बाद से हम पर बराबर हमले हो रहे हैं, हर नया हमला बड़े ज़ोरों से किया जाता था। परंतु भारी हानि के साथ विफल कर दिया जाता था, और अब हम उस मोर्चे पर पहुँच गए हैं, जहाँ से उस स्थान को तोड़ा जा सकता है। मेरे विचार से उत्तम नीति यह है कि इसे कठिन काम की तरह असली रंग में देखा जाय, और यह बात अच्छी तरह से समझ ली जाय कि इसे यथेष्ट सेना के बिना संपादन करना संभव नहीं।

ज़रा एक बार हम शहर में पहुँच जायँ, फिर तो बाज़ी हमारी ही है, बशर्ते कि हम क़ब्ज़ा रख सकें। और, फिर जब कभी मि० कालिन को जिस किसी अभिप्राय के लिये सेना की ज़रूरत होगी, वह उन्हें एकत्रित कर दी जायगी।

देर करना अति कष्टदायक है, और प्रतिदिन इनके आक्र-

मर्णों में सिपाहियों का नष्ट होना हृदय-विदारक प्रतीत होता है। मैं सकुशल हूँ। हाँ, परेशान तो बेशक बहुत अधिक हूँ। परंतु मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जितना अधिक मैं सोचता हूँ, उतना ही अधिक मुझे व्यर्थ और फल-रहित अनुभव के क्रियात्मक रूप में प्रकट न होने की ख़ुशी होती है। और, यह देखने से कुछ ढाढ़स बँधता है कि आप भी मेरे विचारों से सहमत हैं।

मेरी इच्छा केवल इतनी ही है (जिसे और लोग संभवतः अब मालूम कर लेंगे) कि मुझे दिल्ली में दाखिल होने के सिवा और भी कुछ काम करना था।

विश्वास रखिए, मैं अब कोई अवसर हाथ से न जाने दूँगा।

कल हमने इन्हें खूब सजा दी, और पूरी हानि पहुँचाई। इन्होंने किशनगंज और पहाड़पुर तथा ट्रेवलेनगंज में अपने लिये स्थिर होने और तोपख़ाना जमाने की चेष्टा की थी, परंतु हमने दो संक्षिप्त टुकड़ियों के द्वारा, जो मेजर टामस एच० ए०, मेजर रीड मंसूरी बटालियन की कमान में थे, इन्हें न सिर्फ़ इन स्थानों से खदेड़ दिया, बल्कि सराय के ऊपरी भाग को इनसे क़तई साफ़ कर दिया, और नगर के इस भाग से हमने इन सबको निकाल दिया। सुना है, इसका इन पर बड़ा हिम्मत-तोड़ प्रभाव पड़ा, और वे बहुत परेशान हो रहे हैं। परंतु फसीलों से जो गोला-बारी वे

करते हैं, वह वैसी ही सही और ज़ोरदार है, जैसी पहली थी। और, जब तक हम अपने उद्देश्य पर न पहुँच जायँ, हम कुछ लाभदायक कार्रवाई न कर सकेंगे। और, असली काम की यह हालत है कि इस कठिनाई के होते हुए जो तोपख़ाना व हथियार आदि के प्राप्त करने में बरदाश्त करनी पड़ती है—मेरे तोपख़ाने का कमांडिंग अफ़सर सिर्फ़ ६ तोपों के चलाने का प्रबंध कर सकता है! और, मेरे इंजीनियर के पास रेत का एक भी थैला मौजूद नहीं है, यह वास्तव में अत्यंत कष्ट-दायक बात है। मैंने इस समय तक कभी बाक़ायदा आक्रमण करने का ख़याल नहीं किया, जब तक कि मुझे यह आशा न हो गई कि जो तोपें मेरे विरुद्ध लाई जावेंगी, मैं उन्हें शांत कर दूँगा।

पर इस काम को समाप्त करने के विचार से उनके और भी निकट तक पहुँचने की आवश्यकता है। देर करना विद्रोहियों को एकत्र कर देता है और आक्रमण को अत्यंत बलवान् बना देता है। लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि ऐसी कार्यवाही घातक प्रभाव भी अपने में रख सकती है। फिर भी मैं सच्चाई के साथ यह नहीं सोच सकता कि जब उन्हें दिल्ली के दर्वाज़े बंद करने का अवसर दिया गया था, तो उस समय हम इससे अधिक कर सकते थे, जितना कि हमने किया।

यदि मेरठ की फ़ौज तत्काल ही देहली में घुस जाती, तो सब कुछ बचाया जा सकता था, परंतु जब अंबालेवाली

फ़ौज निश्चित स्थान पर पहुँची, तो मौक़ा हाथ से निकल चुका था।

सबसे बड़ा मेगज़ीन और लड़ाई के सामान का डिपो इससे पेश्तर से मेरे विरुद्ध काम में लाया जा रहा था। मेरे सिपाही अच्छी तरह हैं, और ज़ख़मी संतोष-जनक रीति से स्वस्थ हो रहे हैं, पर सब-के-सब इस काम से थक गए हैं।

सदैव आपका—

एच्० एच्० बी०

पत्र नं० ४

(जिसे हेनरी ग्रेट हेड देहली पर घेरा डालनेवाली फ़ौजों के राजनीतिक सलाहकार ने जॉर्ज कार्निकवारेंस के नाम १६ जून, सन् १८५७ को लिखा था।)

कैंप घेरा, देहली

१६ जून, ५७ ई०

प्रिय वारेंस !

मि० रिचर्ड्ज बृहस्पतिवार के दिन पानीपत चले गए। और, यह समाचार मैंने उस समय सुना, जब कि मैं सड़क पर से जा रहा था। उनकी उपस्थिति से किसी हद तक वह भय दूर हो गया था, जो अफ़सरों और डाक के ठेकेदारों में इस धावे के कारण उत्पन्न हो गया था, जिसे दिल्ली के २०० सवारों की पार्टी ने अलीपुर पर किया था। प्रकट में वे तहसीलदार की तलाश में थे। तहसील में पटियाले के सवारों के छोटे-से दस्ते के जितने घोड़े उपस्थित थे, वे सबको लूटकर ले गए। ज्यों ही पंजाब के बेक़ायदा सवार पहुँच जायँगे, हम उनकी कार्यवाही का बदला ले लेंगे।

मुझे रोहतक को राजा साहब जींद के चार्ज में रखने से बहुत प्रसन्नता होगी। परंतु सर एच्० बर्नार्ड (अभी) इनकी

फ़ौजों को अलग नहीं कर सकते, और इसके बिना उनके लिये आक्रमण की चेष्टा करना व्यर्थ होगा।

यदि पटियाला कुछ सेना दे सके, और आपको हिसार की तरफ़ पंजाब से फ़ौजों की नक़ल व चेष्टा की कुछ ख़बर न मिले, तो (उस हालत में) मैं प्रसन्नता से इस बात पर राज़ी हो जाऊँगा कि इस ज़िले को अस्थायी रूप से इनकी संरक्षता में दे दिया जाय। ऐसा करना वास्तव में उस प्रजा पर दया करना होगा, जो हाँसी और हिसार दोनों से सहायता की अपेक्षा कर रही है। आपकी इस योजना पर अमल होने से मुझे बहुत आनंद होगा और यदि प्रबंध हो जाय, तो मैं महाराजा साहब बहादुर की सेवा में ख़रीता लिख दूँगा।

मेरा विचार है कि नवाब साहब झज्जर ने उपचार-रहित रीति से षड्यंत्र रचा है, पर उनका इलाक़ा देहली के उस पार है। और, हमें फ़िलहाल अपना काम निकालना ही चाहिए। नवाब साहब बहादुरगढ़ भाग जाने पर विवश हो गए हैं, और पूर्व शासकों के वंश का कोई शहज़ादा गद्दी पर बैठा दिया गया है। शेष रईस अपनी तटस्थता बनाए रखने में एँड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे हैं।

सामान हमारे पास बहुत है, रुपए की कमी एक ऐसी कठिनाई है, जिसकी निस्बत हमें आशा थी कि देहली फ़तह हो जाने से जाती रहेगी। दिल्ली सर हो जाने से रुपए मिलने की आशा थी। ख़ज़ाना और दफ़्तर कमसरियट के जो सज्जन

अफ़सर इनचार्ज हैं, मैं उनकी चिट्ठियाँ आपके पास भेज रहा हूँ।

जब मैं वहाँ से चला था, उस समय लगभग ४ लाख रुपए थे। मैं ज़ोर से शिफ़ारिश करता हूँ कि जो फ़ौजें अब यहाँ आ रही हैं, उनके साथ काफ़ी रुपया ज़रूर भेज दें। मुझे अपना विश्वास-पात्र समझिए—

एच्० एच्० ग्रेट हेड

पत्र नं० ५

(जिसे ब्रिगेडियर जनरल न्यू चेंबरलेन, ऍजूटेंट जनरल ने जॉर्ज कार्निकवारेंस के नाम १२ जुलाई, १८५७ को लिखा था।)

कैंप दिल्ली के सामने
१२ जुलाई, १८५७
१ बजे दुपहर

प्रिय वारेंस !

अब जब कि करनाल हमारी रक्षित युद्ध-सामग्री और रसद का डिपो बन गया है, हमें वहाँ पैदल फ़ौज का एक दस्ता रखना चाहिए। और, चूँकि इस कैंप से हम एक आदमी भी नहीं दे सकते। इसलिये हमें पूर्ववत् सिपाहियों को भरती के लिये पंजाब से आशा रखनी चाहिए। कृपया इस समस्या के संबंध में लाहौर से बातचीत कीजिए, और, यदि और सिपाही न मिल सकें, तो कम-से-कम सिख सिपाहियों की चार पल्टनों को प्राप्त करने की चेष्टा कीजिए। हमारा पिछला भाग खुला और शांत रहना चाहिए, और यह हमारी भयानक भूल होगी, यदि हम अपने खज़ानों को अरक्षित दशा में छोड़ जायँगे। यह पहला ही अवसर है कि मैंने अधिक सेना माँगी है। यह मैं कदापि न करता, पर

कठिनाई यह आन पड़ी है कि हम एक मनुष्य को भी अलग नहीं कर सकते। ६ जून को एक कड़े मार्के में हमारे २७० सिपाही काम आए, जिनमें घायल, मृतक और बीमार सब शामिल हैं। और, इस पत्र के लिखने के समय भी हम बाहर निकलने (हमला करने) के लिये तैयार हैं। चारों ओर से आक्रमण की धमकी दी जा रही है।

मैंने करनाल को चुनने का अनुरोध इसलिये किया था कि उसका हमारे कैंप से सरलता-पूर्वक पत्र-व्यवहार का संबंध क़ायम किया जा सकता है। दूसरे, वह नगर से इतनी दूर है कि अचानक हमला किसी भी सूरत में नहीं किया जा सकता। मेरठ, सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर तक वहाँ से पत्र-व्यवहार किया जा सकता है, और चूँकि वहाँ के नवाब साहब हमसे मित्रता स्थापित करना चाहते हैं, इसलिये स्थानीय उपद्रव का बहुत कम भय है। इस ऋतु में मारकंदा नदी का कुछ भरोसा नहीं, इसलिये बारूद व ख़ज़ानों को इसके निकट न रखना चाहिए।

सुना गया है, कोई-कोई बाग़ी शिकारी तोप की टोपियाँ काम में ला रहे हैं, इसलिये तमाम दूकानदारों और अन्य आदमियों से, जो इनको बेचते हैं, इन चीज़ों के छीन लेने की तुरंत चेष्टा करना चाहिए, जिससे विस्फोटक पदार्थों के समान कोई चीज़ वे अपने पास न रख सकें। सरकार को चाहिए कि वह एकत्रित सामान पर अधिकार जमा ले, और एक रसीद दे दे।

आपको मालूम हो गया होगा कि चौथे लाइनसर्ज के हथियार रखवा लिए जायँगे और यह कि १०वीं एल, सी, नहीं आ रही है। जबतक आप हमारे देश के पिछले भाग को शांत रक्खेंगे, और हमें सामान व रसद आदि देते रहेंगे, हमारी दशा ठीक रहेगी, या कम-से-कम हम उस समय तक मुक़ाबला करते रहेंगे, जब तक कि वह दिन न आ जाय कि दूसरे आदमी हमारी जगह लेने को तैयार हो जायँ।

आपका विश्वासी—

चैंबरलेन

पत्र नं० ६

(जिसे लेफ्टिनेंट हेनरी नार्मन स्थानापन्न एजूटेंट जनरल ने जॉर्ज कार्निकवारेंस के नाम ता० १६ जुलाई, ५७ को लिखा था।)

कैंप दिल्ली के सामने
१६ जुलाई, ५७ ई०

प्रिय वारेंस !

चैंबरलेन ने मुझे आपकी १७ ता० की चिट्ठी दी, जिससे मैं एक-दो बातों का जवाब दूँ। करनाल के ख़ज़ाने व तोपख़ाने का प्रबंध कप्तान नेचबुल के सुपुर्द किया जानेवाला था, परंतु वह बीमार होने के कारण अंबाले ही में रह गए हैं, इसलिये मैंने तोपख़ाने के किसी डिप्टी असिस्टेंट कमिश्नर को या फ़ीरोज़पुर से कर्तव्य पूरा करने के लिये किसी स्थायी कंडेक्टर को बज़रिए तार बुला भेजा है। यदि कप्तान नेचबुल स्वस्थ हो गए, तो निस्संदेह प्रथम हुक्म—जो कि मि० लीवेस द्वारा पहुँचाया गया था, यथावत् क़ायम रहेगा।

जो अफ़सर प्राइवेट छुट्टी पर गए थे, उन सबको वापस आ जाने की आज्ञा १४ मई को दे दी गई है, और इस आज्ञा को कुछ समय बाद दुहरा भी दिया गया था। हमारे महकमे के कप्तान बेकर ने यह इत्तिला दी है कि इस हुक्म की तामील हो

चुकी है। मुझे किसी ऐसे अफ़सर का हाल मालूम नहीं हो सका, जिसने तामील न की हो। यद्यपि किसी-किसी ने बीमारी के सार्टिफिकेट ले लिए हैं।

प्रतीत होता है, अब कर्नाल में यथेष्ट सेना उपस्थित है।

इसमें आपत्ति की कोई बात नहीं। यदि आप ब्रिगेडियर हार्टली से यह प्रार्थना करें कि वह पाँचवीं बटालियन के दो अफ़सरों को कर्नाल में काम करने के विचार से भेज दें यदि उनकी वहाँ (वास्तव में) आवश्यकता हो, पर यदि कोई अफ़सर न मिल सके, तो एक लेफ्टिनेंट चेस्टर के जूनियर अफ़सर को सरलता से नौशहरे की सहारनपुरस्थ बटालियन के साथ काम करने के लिये भेजा जा सकता है। हमने दुश्मन को कल तीसरे पहर बिना किसी कष्ट के सब्ज़ीमंडी से बाहर निकाल दिया। हमारी ओर १३ मरे और ६६ घायल हुए। अफ़सरों में कल की संयुक्त हानि यह है—लेफ्टिनेंट क्रूज़ियर (७५वीं) हत, एन्साइन वाल्टर (४५वीं देशी पैदल फ़ौज), जो दूसरी न्यूफ्यूज़ीलियर्ज़ के साथ काम कर रहे थे, सरसाम से मर गए। लेफ्टिनेंट जोंस इंजीनियर की टाँग काट डाली गई। लेफ्टिनेंट पाल्टविन (६१वीं पैदल फ़ौज) गंभीर घायल हुए हैं। और लेफ्टिनेंट चेस्टर (तोपख़ाना) ख़फ़ीफ़ तौर पर घायल हुए हैं।

अब और पठानों को मत भेजिए। यह चेंबरलेन की इच्छा है, और इसके लिये कारण हैं। निस्संदेह आप उन्हें, उस

समय भेज सकते हैं, जब कोई रिसाला आ रहा हो और वे भी उसमें उपस्थित हों, परंतु जितने कम हों, उतना ही अच्छा होगा।

आपका विश्वासी—
एच्० एच्० नार्मन

पत्र नं० ७

(जिसे लेफ्टिनेंट डब्ल्यू० एस० आर० हडसन ने जे० डगलस फ़ारेस्थ डिप्टी-कमिश्नर, अंबाले के नाम २९ जुलाई सन् १९५७ को भेजा था।)

देहली-कैंप
२९ जुलाई, ५७

प्रिय फ़ारेस्थ,

जो बूढ़ी स्त्री स्वयं इस पत्र के साथ आ रही है, वह दिल्ली के घेरे की संपूर्ण और मूर्तिमान् कथा है। वह हमारे विरुद्ध नगर में जहाद का व्याख्यान देती और आश्चर्यमय रीति से मुसलमान लोगों को उत्तेजित करती थी। अंततः उनकी असफलता से खिन्न होकर वह स्वयं युद्ध-क्षेत्र में उतर आई। और, सब्ज़ लिबास पहन, घोड़े पर सवार हो, तलवार-बंदूक़ से सज-धजकर इसने सवारों के एक दस्ते की कमान ली, और ७५वीं पैदल सेना पर आक्रमण किया। सिपाहियों का कथन है कि इस एक का सामना करना ५ सिपाहियों का सामना करने से अधिक भयानक था। वे यह भी कहते हैं कि इसने उनके मित्रों में से बहुतों को बंदूक़ से उड़ा दिया। अंततः वह घायल होकर गिरफ़्तार हो गई। जनरल ने पहले उसे

स्वतंत्रता से चले जाने की आज्ञा देनी चाही थी, पर मैंने उनसे मिन्नत करके कहा कि वे ऐसा न करें—इसलिये कि वह फिर शहर में विजयी रूप से प्रवेश करेगी, और हमारे क़ब्ज़े से निकल जाने पर तअस्सुब (हठधर्मी) का तूफ़ान बेतमीज़ी मचा देगी; और निस्संदेह, यह प्रकट करेगी कि वह अपनी करामात के कारण बच गई है। इस तरह से जोन ऑफ़् आर्क का-सा रुतबा हासिल करेगी।

मुझे उसको आपके पास भेजने की आज्ञा मिल गई है, जिससे वह जेल में सावधानी से रक्खी जाय, या जहाँ कहीं आप उचित समझें—जब तक यहाँ का काम समाप्त न हो जाय।

क्या आप कृपा कर इस बात का खयाल रक्खेंगे कि इसका व्यवहार विश्वसनीय रहे। यह कहते हुए आश्चर्य होता है कि वास्तव में इस बुढ़िया खूसट ने बड़ा असर पैदा कर लिया था।

आपका अधिक विश्वासी—
डब्ल्यू० एस० आर० हडसन

पत्र नं० ८

(जिसे हेनरी ग्रेटहेड राजनीतिक सलाहकार ने, जिनकी निकटस्थ सेना देहली पर नियुक्त थी, जॉर्ज कार्निकवारेंस को, १५ अगस्त, सन् १८५७ को, लिखा था।)

कैंप देहली के सम्मुख
१५ अगस्त, १८५७ ई०

प्रिय वारेंस,

मौलवी रजबअली ने मुझसे यह चाहा है कि मैं आपको यह सूचना दूँ कि उन्होंने हकीम अहसन उल्ला के नाम एक पत्र भेजा था, जो मुझे पढ़कर सुनाया गया था। मेरा यह खयाल था कि इससे कुछ हानि न होगी। बल्कि संभव है कि इसकी वजह से हकीम साहब बादशाह और बागियों के भीतरी भेद बता सकें। मौलवी साहब का कथन है कि इसके कारण हकीम साहब की बड़ी बेइज्जती हुई है, क्योंकि वह खत सिपाहियों के हाथ में पड़ गया, जिन्होंने इनके मकान की तलाशी ले डाली—पर इसका विश्वास कठिनाई ही से किया जा सकता है कि हकीम अहसन-उल्लाखाँ की तलाशी ली गई या इन्हें कुछ हानि पहुँची।

कैंप की दशा में उन्नति हुई है। हम हर तरह आराम से हैं। और, अभी तक सेना का स्वास्थ्य अच्छा है, जिस के लिये हम

परमेश्वर को धन्यवाद देते हैं। शत्रु को समस्त स्थानों पर और तमाम जंगी चालों में पूर्ण रूप से असफलता हुई है। जब तक क़िलातोड़ तोपें पूरी सामग्री-सहित न पहुँच जायँ, तब तक कोई बड़ी कार्यवाही का फ़ैसला करना बिल्कुल व्यर्थ है। उस समय तक यह प्रतीत हो जायगा कि जनरल हावलाक की प्रतीक्षा करनी चाहिए या नहीं। अब तक तो हर बात से यह प्रतीत होता है कि अवध की बाग़ी फ़ौजों का शीघ्र सफ़ाया हो जायगा। मुझे आगरे से यह सूचना मिली है कि ढाई हज़ार नैपाली सेना जनरल हावलाक से लखनऊ में मिलनेवाली थी। डरमंड को अंत में आगरे के देशी अफ़सरों की नालायक़ी की सज़ा भुगतनी पड़ी। उन्होंने इन पर विश्वास किया, और वही स्टेशन को नष्ट करने में अगुआ थे। पानीपत में ३,२२,००० रुपया कर-स्वरूप प्राप्त हुआ है। मेरठवालों ने अपने ख़ज़ानों को भरपूर कर लिया है। हडसन गाइड्ज़ (पथ-प्रदर्शकों) के साथ बाहर गए हैं—वहाँ वह उन विद्रोहियों के दस्ते की देख-भाल करेंगे, जो रोहतक चला गया है। इन विद्रोहियों का यह इरादा था कि वे ऐसे कुछ दस्तों को बाहर भेजें, जिससे वह देश को उपद्रव करने पर तैयार कर सकें। पर किसी ने कहा, यह अहसनउल्ला की एक चाल है, ताकि वह देहली की सेना को (उसके कुछ हिस्से को बाहर भेजकर) कमज़ोर कर दें, और फिर नगर को हमारे क़ब्ज़े में करा दें।

मैं विश्वास करता हूँ कि आपने जींध की सेना से रोहतक के विद्रोहियों को वश में लाने की योजना पर (अभी तक) अमलदरामद नहीं किया होगा। निस्संदेह आपके पास ऐसी कार्रवाई न करने के यथेष्ट कारण हैं। ब्रगेडियर वाल्टाइल को आगरे में बरतरफ़ कर दिया गया है, और कर्नल काटन अब उनकी जगह विराज रहे हैं।

आपका विश्वासी—

एच्० एच्० ग्रेटहेड

पत्र नं० ९

(जिसे हेनरी ग्रेटहेड पोलिटिकल सलाहकार ने जिनकी नियुक्ति देहली की निकटस्थ सेना पर थी, जॉर्ज कार्निंक वारेंस के नाम ३० अगस्त सन् १८५७ ई० को लिखा था ।)

कैंप देहली के सामने
३० अगस्त, १८५७

प्रिय वारेंस,

लीविस की इच्छा है, गोहाना में मालगुज़ारी वसूल करने की ग़रज़ से एक तहसीलदार नियत कर दिया जाय। मैं उन्हें एकाएक इस कार्यवाही को करने की आज्ञा नहीं दे सकता। क्योंकि महाराजा जींध के प्रबंध से मुँहभेड़ हो जाने का भय है, परंतु यदि राजा साहब कुछ न कर रहे हों, तो मेरी इच्छा है कि आप लीविस से कह दें कि वह अच्छे ढंग से मालगुज़ारी जमा करने का प्रबंध कर दे।

मुझे विश्वास नहीं होता कि लखनऊ के लिये किसी प्रकार का भय है। हावलाक साहब बिठूर और शिवराजपुर में विद्रोहियों को हराकर अपने पिछले और बाज़ुओं के भाग को साफ़ कररहे हैं। मैं यह नहीं सोच सकता कि भय की आशंका होने पर भी यदि लखनऊ की क़िलेबंद सेना को बचाने के लिये

हमले की ज़रा-सी ज़रूरत मालूम होती, तो वह (हाव-लाक) अपनी वर्तमान कार्यवाही को जारी रखते। आगरे के क़िले की सेना के एक दस्ते ने अलीगढ़ के निकट बड़ा मार्का सर किया है। इन्होंने ३,००० विद्रोहियों को मार भगाया और उनके तीन-चार सौ आदमियों को मार डाला है। नाभा के सवारों में से काक्स का नाम ख़ास तौर पर लिया गया है। मेजर टॅडी एंसाइन मार्श और तीन प्राइवेट अफ़सर मारे गए। कप्तान पील की अधीनता में एक ब्रेगेड् भेजा जा रहा है। मदरास अनफ़ॅटरी (पैदल फ़ौज) का एक ब्रेगेड् कलकत्ता पहुँच गया है। मदरास की सेना जबलपुर और पंजोर पर अधिकार पा चुकी है।

आपका विश्वासी—

एच्० एच्० ग्रेटहेड

पत्र नं० १०

(जिसे हेनरी ग्रेटहेड ने जॉर्ज कार्निकवारेंस के नाम लिखा था।)

कैंप

६ सितंबर, १८५७

प्रिय वारेंस !

यदि आप प्रतिदिन तार-समाचार पढ़ते हैं, तो (उनके सामने) मेरी खबरें बासी प्रतीत होंगी। क़ुदसियाबाग़ और लेडलो कैसल ७ ता० की रात को अधिकार में आ गए थे। इसी समय मोरी दरवाज़ा पर ६५० गज़ के अंतर से १० तोपों की एक बैटरी सज्जित कर दी गई थी। सुबह होते-होते चार तोपें चलना शुरू हो गईं, और शाम तक सब चलती रहीं। तोपख़ाने पर शुरू में कड़ी गोला-बारी की गई, और क़ुदसिया तथा लडकी चौकियों पर भी आक्रमण किया गया, परंतु हमारी कुछ विशेष हानि न हुई। लेफ्टिनेंट हांइलडियरेंड (तोपख़ाना), लेफ्टिनेंट बेज़ियन (बिलोची) मारे गए, और लेफ्टिनेंट वुड (तोपख़ाना) घायल हुए। लगभग ३० सिपाही मारे गए और घायल हुए। गत रात्रि से प्रातः १० बजे तक केवल ३ आदमी घायल हुए। मोरी दरवाज़ा और कश्मीरी दरवाज़े पर निशानेबाज़ी ख़ूब सफल रही। गत रात

को २२ छोटी तोपें चढ़ाई गई थीं। और एक और भारी तोपों की बैटरी भी तैयार है। जब ये सब चढ़ जायँगी, तो भयानक गोला-बारी होगी। मेरे भाई साहब पश्चिमी मोर्चे के इंचार्ज हैं। मुझे उनके पास से अभी एक मनोरंजक और हिम्मत बढ़ानेवाला पत्र मिला है। वह जबरदस्त पैमाने पर तोपख़ाने का आक्रमण प्रारंभ करने के लिये परसों का दिन नियत करते हैं। जिस गति से ब्राइड अपनी दस तोपों से काम ले रहे हैं, इसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उस समय तक मोरी दरवाज़े का बहुत कम भाग बाक़ी रह जायगा।

आपका विश्वासी—

एच्-एच्० ग्रेटहेड

पत्र नं० ११

(जिसे पूर्व लेखक ने पूर्व महाशय को लिखा था ।)

कैंप देहली

१३ सितंबर, ५७

प्रिय बार्नेस !

फ़िलहाल मोरी दर्वाजे का बुर्ज भारी तोपें लगाने के योग्य नहीं, फिर भी छोटी तोपें वहाँ से कभी-कभी धोका देने के अभिप्राय से चला दी जाती हैं। कश्मीरी दर्वाजे का बुर्ज प्रभावोत्पादक ढंग से शांत कर दिया गया है। और, अब वह खँडहर का एक ढेर है, और तोपों के जो गोले वहाँ फेंके जा रहे हैं, उनकी उपस्थिति में उस स्थान पर किसी को टिकने की हिम्मत नहीं होती। बुर्ज के दाहनी ओरवाली फ़सील में बहुत बड़ा सूराख़ कर दिया गया है। और, हमारे गोले इस दरार को क्रमशः बढ़ा रहे हैं। बाईं तरफ़ की दरार डालनेवाली बैटरी ने, जो कस्टम हाउस के कंपाउंड की दीवार से १८० गज़ के अंतर पर लगाई गई थी, सिर्फ़ कल से गोलाबारी शुरू की है। इस तोपख़ाने की तामीर में बड़े भारी झंझटों का सामना हुआ, और जंगी कार्रवाइयों में देर भी हो गई। पहले इसे क़ुदसिया बाग़ में लगाने का

इरादा था, जहाँ वह अधिक सुरक्षित और शीघ्रता से तैयार हो सकता था, पर इसके और फ़सील के बीच में नई कठिनाइयाँ दृष्टि पड़ीं, जो किसी नक़्शे में दर्ज न थीं। इसलिये सामने की ओर बहुत-सी नई ज़मीन को भी ऐसे अंतर से ठीक करना पड़ा, जहाँ मज़दूरों पर बहुत अधिकता से गोला-बारी होती रही। बैटरी (तोपख़ाना) कल तीसरे पहर तक तैयार न हो सकी, और, अब वह पानी के बुर्ज और बीच की दीवार के विरुद्ध काम में लाई जा रही है। परंतु यह काम कड़ी मिहनत और परेशानी का है। प्रत्येक आदमी को कप्तान फ़ोगन की मौत का शोक है। जिनके बैटरी चलने के थोड़ी ही देर बाद सिर में गोली लगी। वह हद से ज्यादा शूर-वीर थे, और ख़तरे में स्वयं पड़ने से रोके नहीं जा सकते थे। गोली लगते समय उनका आधा शरीर ख़ंदक के बाहर था, और वह यह देख रहे थे कि निशानेबाज़ी कहाँ से की जाय। जिन ख़तरों और कठिनाइयों पर सफलता प्राप्त की गई है, वह अत्यंत भयानक हैं। तोपख़ाने के अफ़सरों को ज़रा भी विश्राम का अवसर नहीं मिला है। और, जब से तोपख़ाने युद्ध करने में लगे हैं, रात-दिन काम में लगे हुए हैं। शहर को गोला-बारी में बहुत कुछ कमी आ गई है, पर शत्रु कई अनिश्चित स्थानों पर बड़ी-बड़ी तोपें लगाने में बड़ा होशियार और कार्यदक्ष प्रतीत होता है, और वह उस मैदान से, जो हमारी दाहनी ओर है, भयानक विध्वंसक गोला-बारी

कर रहा है। और, हमारी बाईं ओर नदी की ओर से दो तोपों के जरिए भी उसकी गोले-बारी अब तक बराबर जारी है। सलेमगढ़ भी हमारी तमाम पश्चिमी बैटरियों पर गोले और बम फेंक सकता है। इन सब कठिनाइयों के होने पर भी हमारी कार्रवाइयाँ उन्नति कर रही हैं, और मुझे विश्वास है कि हल्ला कल या परसों शुरू हो जायगा। कमांडिंग अफ़सरों को कुल हिदायतें मिल गईं। सब स्थानों पर रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध कर लिया गया है। केवल बाहर निकलकर उनके अचानक आक्रमणों की रोक-थाम के लिये कुछ नहीं किया गया। और, वह इन आक्रमणों का कुछ भी प्रबंध नहीं कर सकते। घिर जानेवाली सेना में से सिपाहियों के भाग जाने के संबंध में मुझे कोई विश्वस्त सूचना नहीं मिली है। घेरा डालना बच्चों का खेल नहीं। पर कोई शक्ति हमारी सेना की वीरता में बाधक नहीं हो सकती। और, तमाम बातों पर ध्यान देते हुए हमारी हानियाँ भारी नहीं कही जा सकतीं। कुछ अफ़सरों के नाम ऊपर बयान कर दिए गए हैं। इनके अलावा नीचे लिखी हांनियाँ भी हुई हैं—घायल—मेजर केंबल तोपख़ाना। लेफ़्टिनेंट अरल तोपख़ाना। लेफ़्टिनेंट गल्पी तोपख़ाना। चांसलर ७५वीं रेंडल ५६वीं देशी पैदल फ़ौज। लागहार्ट ला। ईटन ६०वीं राइफ़लज़।

मुझे और किसी का नाम याद नहीं आता। विलियम एडवर्डज़ फ़तहगढ़ के निकट किसी गाँव में बाल-बच्चों-सहित

जिंदा है। मुझे ग़रीब पिता थारन हिल का खेद है, वह अच्छा आदमी था।

उत्तरी-पश्चिमी भाग में हमारे पास अफ़सर कम रह गए हैं। मि० कालविन पेचिश से कष्ट पा रहे हैं। उन्होंने मौक़ा मिलते ही चले जाने का निश्चय कर लिया है, और मैं अपने प्रबंध को पूर्ण रूप से पुनः ठीक करने को तैयार हूँ, परंतु कह नहीं सकता कि आई० पी० ग्राट एग्ज़ेक्यूटिव (कार्यकर्ताओं) के हाथ मज़बूत करेंगे या नहीं। मेरे आदमियों ने कभी-कभी मि० बारेंस का ज़िक्र किया है, और वह सदा उनकी कुशल-क्षेम जानने के इच्छुक रहते हैं।

आपका विश्वासी—

एच्० एच्० ग्रेट हेड

पत्र नं० १२

(जिसे उपर्युक्त लेखक ने उपर्युक्त महाशय को लिखा था ।)

देहली-कैंप

१६ सितंबर, १८५७

प्रिय वारेंस !

मैंने लेडलू कैसल की ऊँचाई से हल्ला देखा । मैं नहीं कह सकता कि कोई आदमी अधिक समय तक इन कुछ क्षणों की विकलता को सहन कर सकता है । जो दस्ते के सरों के ग़ायब होने और उसके दरार तक पहुँचने के लिये गुज़रने आवश्यक हैं । जो गोला-बारी फ़सीलों से पानी के बुर्जवाले दरार पर बरस रही थी, वह इतनी ज़बरदस्त थी कि सिर्फ़ दो सीढ़ियाँ ख़ंदक तक पहुँचने में सफल हो सकीं । मेरे भाई दिल्वी तोपख़ाने से इस दरार तक जाते-जाते घायल हो गए हैं । गोली इनकी दाईं हँसली से गुज़रकर सीने के पार उतर गई है । दूसरे भाई आक्रमण की तमाम जोखिम सहने के बाद भी बच गए । ईश्वर को धन्यवाद है कि वह अब सर्वथा स्वस्थ हैं । कश्मीरी दरवाज़े की फ़सील के सूराख़ तक सीढ़ी लगाकर पहुँचने और दरवाज़े को बारूद से उड़ा देने और भीतर घुस जाने की कार्रवाई बहुत सफल रीति से अमल में आई । यह सब

कुछ दिन-दहाड़े हुआ। निकलसन का दस्ता फ़सीलों के चारो ओर मार-काट करता हुआ लाहौरी दरवाज़े के बुर्ज तक पहुँच गया। वह घायल हो गए। युद्ध-सामग्री में कमी हो गई है, और उन पर बाग़ियों ने पलटकर फिर काबली दरवाज़े पर हमला कर दिया। करनेल केंबल का दस्ता, जो बीर मेटकाफ़ की अधीनता में था, अत्यंत सफलता से जामे मसजिद पहुँच गया। उनका इंजीनियर अफ़सर गोली खाकर मारा गया, और रेत के थैले पीछे रह गए। और, आदमी हेंडी और ब्राउन इंजीनियर की अधीनता में भेजे गए। हेंडी घायल हुए, और ब्राउन साहब मारे गए। लाहौरी दरवाज़े से कोई सहायता नहीं आई। और, इसलिये केंबल को हटना पड़ा। पहले बेगम के बाग़ की ओर, जिसे वह एक घंटे क़ब्ज़े में रख सके, और तत्पश्चात गिरजा के अहाते में। यह एक नाज़ुक मौक़ा था। हमारे सिपाही थककर चूर हो गए थे। बहुत-से अफ़सर नाकाम हो गए थे। घबराहट बहुत फैल गई थी। यह मालूम हो गया था कि रीड का दस्ता किशनगंज पर क़ब्ज़ा करने में बिल्कुल नाकाम रहा। तोपें लाई गईं, और बड़े-बड़े बाज़ारों की ओर मोड़ दी गईं। इस तरह पांडे का अंतिम अवसर भी हाथ से निकल गया।

शोक है, जंमूँ की सेनाएँ जब से अपने पहाड़ी स्थानों से निकली हैं, न सिर्फ़ बिल्कुल असफल रहीं, बल्कि किशनगंज में पांडों के मुक़ाबले में इनके हाथ से चार तोपें भी जाती रहीं। इस कारण उन्होंने रीड के बाज़ुओं को ख़तरे में डाल

दिया। यदि यह सच्ची ख़बर है, तो दीवान साहब ने ही भागने में बाज़ी मारी। जींद की पैदल फ़ौज की कारगुज़ारी बहुत अच्छी रही। आज हमारी पोज़ीशन (दशा) में बहुत उन्नति हुई है। मेगज़ीन पर अधिकार कर लिया गया है, और अब हमारा अधिकार काबुली दर्वाज़े से लेकर नहर के बराबर उस फ़ौज की चौकियों तक फैल गया है, जो मेगज़ीन पर अधिकार रखती है। नगर के इस तमाम भाग को निवासियों ने खाली कर दिया है, इसलिये वहाँ से जो रुपया-पैसा मिल सकेगा, अपने क़ब्ज़े में ले लिया जायगा। पांडों की एक पर्याप्त संख्या मारी गई और मेरा ख़याल है, बहुत कम लोग बचने पाए हैं। परंतु किसी स्त्री को आँखों देखते हानि नहीं पहुँचाई गई।

कैंप की रक्षा किशनगंज की असफलता से एक हद तक ख़तरे में पड़ गई थी। इस पर आक्रमण का भय था, पर हुआ नहीं। सलेमगढ़ और शाही महलों पर गोले बरसाए जा रहे हैं। मेरा ख़याल है, पूरी सफलता होगी। हमारी सेना में मृत और घायलों की संख्या ८०० से कम न होगी। निकलसन की जान का भय है। इनके स्थान की पूर्ति असंभव है। कर्नल कैंबल (५२वीं) भी काम के योग्य नहीं रहे। पूरे कर्नल जो रह गए हैं, उनके ये नाम हैं—लांग्फ़ील्ड (८वीं), जोंस (६१वीं), वेटनेस (५२वीं)। जनरल विलसन की बहुत कुछ हिम्मत बढ़ाई गई है। मिस्टर काल्विन ९वीं को मर गए।

मिस्टर रीड ने सेंटर सिवलियन होने की हैसियत से इस संबंध में एक असाधारण सरकारी गज़ट छपाया है कि इन्होंने उत्तरी-पश्चिमी सूबों की हुकूमत की बागडोर अपने हाथ में ले ली है। वरतिरिया के पास उसके इलाक़े के बराबर रियासत मौजूद है।

आपका—

एच० एच० ग्रेट हेड

पत्र नं० १३

(जिसे सर जॉन लारेंस चीफ़ कमिश्नर, पंजाब ने जॉर्ज कार्निकवारेंसके नाम ११ ऑक्टोबर, सन् १८५७ को लिखा था।)

लाहौर

११ ऑक्टोबर, १८५७

प्रिय वारेंस !

आपने जो ५०) डाकबँगले में उस ग़रीब लड़की को दिए थे, उन्हें मैं आपकी सेवा में भेज रहा हूँ। मुझे उसका नाम याद नहीं रहा। मुझे आशा है, वह सुरक्षिता अपने स्थान तक पहुँच गई होगी। मैंने सांडर्स को लिख भेजा है कि मौलवी रजब-अली साहब को भेज दें। जो ग़रीब अपनी सेवाओं को करते हुए घेरे में फँस गए हैं। मुझे मलूल को पंजाब में वापस बुला लेने से प्रसन्नता होगी। और, मैं इनके फ़ायदों का ख़ास ख़याल रक्खूँगा।

तूफ़ान बीत गया। और, हमें साँस लेने की फ़ुर्सत मिली। जब मैं बीती हुई घटनाओं पर विचार करता हूँ, तो मुझे इस बात पर आश्चर्य होता है कि हम लोग कैसे अब तक ज्यों-के-त्यों ज़िंदा उपस्थित हैं, सिर्फ़ परमेश्वर की कृपा से हम ज़िंदा बचे हैं। निःसंदेह यह बात हमारी

आशा से अधिक निकली कि तमाम पंजाबी पलटनें राज-भक्त हैं। हज़ारा के बारे में मुझे अभी तसल्ली नहीं हुई। मरी में भी कुछ उत्पात होनेवाला था, जैसी कि मैंने आशा की थी। मामलात अभी तक पूरे तौर पर तय नहीं हुए। मैं पिंडी में एक और सेना भेज रहा हूँ, और उस सेना को हटा देना चाहता हूँ, जो लुधियाने में अभी भर्ती की गई है। गोलनेर में बदइंतज़ामी फैली है, और जंगल बहुत घना है। बाग़ियों को सरलता से वहाँ पनाह मिल सकती है। जानपेइन जिन्होंने फ़ौज की कमान की थी, सख़्त बुज़दिल निकले। इसलिये कि जब बदमाश इनके हाथ में थे, वे इनका कुछ भी न कर सके। अब इन्हें बुख़ार चढ़ आया। अब इन्हें अवश्य वापस आ जाना चाहिए। फिर कहीं-कहीं मैं आशा कर सकता हूँ कि सारे मामलात ठीक-ठीक तय हो सकेंगे। सिक्खों की उन दो पलटनों का क्या परिणाम हुआ, जिन्हें रक्टस ने भर्ती किया था। मुझे आशा है, इन्हें छोड़ न दिया गया होगा।

जैसा कि आप जानते हैं, मैं मनुष्यों की अनावश्यक प्रशंसा करने का अभ्यासी नहीं हूँ। अब मुझे अपनी भूल मालूम हुई है। पर जो कुछ भी मैं कहता हूँ, उससे मेरा अभि-प्राय भी वही हुआ करता है। और, मेरी राय में तो आपने बहुत अच्छा किया कि डिवीज़न को दाहनी ओर रक्खा, और सेना की मदद की। आपकी चौकी बड़े ख़तरे में थी।

पटियाला, नाभा और जींद के लिये जो इनाम हमें नियत करने चाहिए, उन पर पूरी तरह विचार कर लीजिए। इन्हें अवश्य ही इनाम-इक़राम देना चाहिए। यदि ये राजभक्ति न करते, तो हम कहाँ के रहते ❀ ?

आपका विश्वासी—
जॉन लारेंस

❀ नवाब झज्झर व रईस दादरी, जिन पर बग़ावत का इल्ज़ाम था, इनकी जागीरें ज़ब्त करके इन तीनों में बाँट दी गई थीं।

देहली के ग़दर की कहानियाँ

अँगरेज़ों की विपत्ति

ग़दर होने के लगभग एक महीना पहले, पहली एप्रिल सन् १८५७ ईस्वी को, एक विज्ञापन इस आशय का 'जामा मस्जिद', देहली में चिपकाया गया था कि ११ मई को देहली लूटी जायगी, और बड़ी ख़ून-ख़राबी होगी। मगर हाकिमों ने इस तरफ़ कुछ ध्यान नहीं दिया, और मामूली अफ़वाह समझकर हँसी में टाल दिया गया। उत्तरी-पश्चिमी अख़बारों ने भी इसको कोई महत्त्व न दिया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि सर्व-साधारण जन शांत और निश्चिंत होकर बैठ रहे। यहाँ तक कि ११ मई का वह भयानक दिन आ गया, और मेरठ के विद्रोहियों की एक टुकड़ी ७ बजे सुबह के वक़्त नावों से जमुनाजी को पार करके शहर में घुसी। इन विद्रोहियों में कुछ नेज़े-सवार और कुछ बीसवीं और ग्यारहवीं हिंदोस्तानी रेजिमेंट के पैदल सैनिक सम्मि-लित थे।

सबसे पहले इन विद्रोहियों ने घाट के ठेकेदार को लूट लिया। इसके बाद पुल द्वारा शहर में घुस पड़े, और पुल ही पर एक फ़िरंगी को, जो रास्ते में इनको दृष्टि पड़ गया था, मार डाला। नदी पार करने के बाद मल्लाहों ने पुल

तोड़ दिया। सवार घोड़ों पर पार होकर देहली-दरवाज़े के रास्ते से अंगूरीबाग़ की तरफ़ रवाना हुए। यह बाग़ क़िले के नीचे था, और यहाँ बड़े साहब यानी रेज़िडेंट रहते थे। ये सवार इस विचार से वहाँ गए थे कि उनको क़त्ल कर डालें; इतने में कोतवाल को ख़बर हो गई। वह भागता हुआ साइमन फ़्रेज़र साहब के पास गया, और उनको इस घटना की ख़बर दी। साहब ने फ़ौरन् हुक्म दिया कि दफ़्तर के तमाम काग़ज़ात शहर में ले जाओ, और स्वयं दोनाली बंदूक़ भरकर बाग़ियों की तरफ़ गाड़ी में बैठकर चले कि इस गड़बड़ को किसी तरह दबावें, किंतु विद्रोही इनको देखते ही इनकी जान के ग्राहक हो गए। बेचारे फ़्रेज़र साहब ने यह रंग देखा, तो जान बचाने की चिंता करने लगे, और गाड़ी से कूदकर समन बुर्ज के रास्ते क़िले के अंदर जाकर उसके दरवाज़े बंद कर दिए। इसी बीच में उन्होंने एक-दो बलवाइयों को गोलियों का निशाना भी बनाया। समन बुर्ज से फ़्रेज़र साहब सीधे क़िले के लाहौरी दरवाज़े पर गए, और इस दरवाज़े के दरबान को आज्ञा दी—"यह दरवाज़ा भी बंद कर दो।"

इसके बाद एक विद्रोही ने आकर सूबेदार से कहा—"दरवाज़ा खोल दो।" सूबेदार ने पूछा—"तुम कौन हो?" उसने जवाब दिया—"मैं मेरठ के रिसाले का सवार हूँ।" सूबेदार यह सुन थोड़ी देर चुप रहा, और इसके बाद बोला—"और सिपाही कहाँ हैं?" सिपाही ने जवाब दिया—

"वे सब अंगूरीबाग़ में हैं ।" यह सुनकर सूबेदार ने उससे कहा—"जाओ, उन सबको बुला लाओ।" वह सिपाही चला गया। जब वे सब जमा हो गए, तो सूबेदार ने दरवाज़ा खोल दिया, और सारे सिपाही क़िले में दाख़िल हो गए। कप्तान डग्लस ने क़िलेदार से और फ्रेज़र साहब ने सूबेदार से कहा—"तुमने ऐसा धोका दिया, तुमसे यह संभावना न थी।" फिर कुछ समझाना चाहा, और सूबेदार से कहा—"सिपाहियों से कहो, बंदूक़ें भर लें।" क्योंकि क़िले के दरवाज़े पर हमेशा एक गारद रहा करता था, और वह इन विद्रोहियों की रोक-थाम के लिये काफ़ी था, परंतु सूबेदार पहले ही से प्रतिकूल और विद्रोहियों के षड्यंत्र में सम्मिलित हो चुका था। उसने इस आज्ञा का भी पालन नहीं किया। बल्कि अत्यंत कटुता से पेश आया, और गंदी गाली देकर कहा—"यहाँ से चले जाओ।" दोनो अँगरेज़ों ने जब यह रंग देखा, तो विवश हो वहाँ से भागकर क़िले के भीतरी हिस्से की तरफ़ आए। वे ग़रीब भागते हुए आ ही रहे थे कि रास्ते में विद्रोहियों के सवार मिल गए। एक ने फ्रेज़र साहब और दूसरे ने कप्तान डग्लस पर पिस्तौल का फ़ायर किया, जिससे दोनो घायल हो गए, और दीवारके सहारे खड़े हो गए। इसके अनंतर एक विद्रोही आया, और तलवार के वार से दोनो के सिर काट डाले। इस दुःखदायी समाचार को एक साहब ने दूसरे प्रकार से वर्णन किया है। उनका कहना है—

जब फ्रेज़र साहब गोली खाकर घायल हुए, तो उसी अवस्था में उन्होंने दो विद्रोहियों को मार डाला, और गाड़ी पर सवार होकर भाग चले। यद्यपि घाव गहरा था, और उससे बहुत रुधिर बह रहा था, तथापि गाड़ी चलाने की शक्ति अवशिष्ट थी। अथवा प्राणों के भय से साहस अपना काम कर रहा था। इसी तरह भागे जा रहे थे कि एक विद्रोही आया, और उसने साहब के साईस को तलवार देकर कहा कि तू इसको मार डाल। आततायी साईस ने तलवार ले साहब के एक हाथ ऐसा मारा कि सिर धड़ से अलग जा गिरा। फिर कप्तान डग्लस को भी मार डाला। इसके बाद विद्रोही दीवाने-आम की तरफ़ गए। वहाँ दो ग़रीब मिसें थीं, उनको भी इन दुष्टों ने न छोड़ा, और बंदूक़ का निशाना बना ही दिया। वहाँ से निकलकर सीधे दरियागंज का रास्ता लिया। यहाँ आकर तमाम मकानों में आग लगा दी। ये मकान ज्यादातर अँगरेज़ों के थे। इस बीच में एक और रेजिमेंट विद्रोहियों की घुस आई, और आते ही शहर के लुच्चों और गुंडों से कहा कि तुम लोग शहर को ख़ूब लूटो, हम लूटने में सम्मिलित नहीं होंगे। जो विद्रोही दरियागंज को जला रहे थे, उन्होंने वहाँ ५ अँगरेज़ों और दो मेमों को मार डाला। बाक़ी जितने ईसाई थे, वे सब राजा किशनगढ़ की कोठी में जाकर आश्रित हुए। जब दरियागंज जलकर ख़ाक हो गया, तब विद्रोही वहाँ से बैंक

की कोठी पर गए। इसको भी आग लगाकर जला डाला, और ५ अँगरेज़ों को जान से मार डाला। फिर वहाँ से कोतवाली गए, और बदमाशों से कह दिया कि शहर को ख़ूब लूटो। कोतवाल भयभीत होकर कोतवाली छोड़कर भाग गया, और कोई तदबीर दीन-दुखियों के बचाने की न की। कोतवाली से स्वर्गीय सिकत्तर साहब की कोठी पर गए, पर उसमें आग नहीं लगाई, लेकिन वहाँ गिरजा और उसके आस-पास के मकानों में आग लगाकर जला दिया, तथा उनमें जो अँगरेज़, मिसें और अबोध बच्चे थे, सबको क़त्ल कर डाला। अनंतर उन्हीं विद्रोहियों में से पाँच सवार छावनी पहुँचे। इनके पहुँचते ही वहाँ जितने सिपाही थे, उन्होंने अपने ऑफ़िसरों के बँगलों में आग लगाना शुरू कर दिया। और, जो अँगरेज़ मिला, बड़ी निर्दयता से उसे मार डाला। बाक़ी सवार मेगज़ीन की तरफ़ गए, किंतु निकट पहुँचे ही थे कि जितने सिपाही थे, वे सब तथा एक हज़ार नगर-निवासी मेगज़ीन के फटने से उड़ गए। ईश्वर जाने मेगज़ीन में क्योंकर आग लग गई।

अब यहाँ छावनी में जितने सिपाही थे, दो भागों में विभक्त हो गए। कुछ तो विद्रोहियों के साथ मिलकर शहर को लूटने में लग गए, और दो रेजिमेंट लालडिग्गी के निकट क़िले के सामने ठहरीं। इनमें से एक गारद राजा किशनगढ़ की कोठी पर गया, क्योंकि उसने अँगरेज़ों को आश्रय दिया था। उस कोठी में १२ प्राणी आश्रित थे। इस दल ने वहाँ पहुँचकर कोठी में आ

लगा दी, जो एक रात और एक दिन बराबर जलती रही। दूसरे रोज़ शत्रु मेगज़ीन में से दो तोपें उठा लाए, और तमाम दिन इस पर गोले बरसाते रहे। लेकिन आश्रित ऑंगरेज़ तहख़ाने में चले गए थे, इसलिये सब सुरक्षित रहे, और किसी क़िस्म का उनको नुक़सान नहीं पहुँचा। इसके बाद विद्रोहियों ने तमाम शहर को लूटना प्रारंभ कर दिया। यहाँ तक कि सिकत्तर साहब की कोठी को भी शहर के बदमाशों ने ख़ूब लूटा। यद्यपि मेरठ के विद्रोहियों ने इसमें अब तक हाथ नहीं लगाया था।

१३ ता० को विद्रोहियों ने फिर दुबारा उन ऑंगरेज़ों पर हमला किया, जो राजा किशनगढ़ की कोठी के अंदर तह-ख़ाने में छिपे हुए थे। पर उस दिन ऑंगरेज़ों ने भी कोठी के अंदर से गोलियाँ चलाईं, और कुछ शत्रुओं को मार डाला। पर जब उन ग़रीबों के पास गोली-बारूद नहीं रही, तब सिवा चार ऑंगरेज़ों के सब बाहर निकल आए, और लड़ते रहे। इसी बीच में युवराज साहब भी वहाँ पहुँच गए, और विद्रोहियों से कहा कि इन ऑंगरेज़ों को हमें दे दो, हम इन्हें हिरासत और निगहबानी में सुरक्षित रक्खेंगे। पर विद्रोहियों ने एक न मानी, और सबको मार डाला।

मिस्टर जॉर्ज सिकत्तर साहब अपने बाल-बच्चों-सहित क़िले में आश्रित थे। गुप्तचरों ने संदेश दिया कि वह वहाँ छिपे हुए हैं। विद्रोही उन्हें क़िले से कोतवाली पकड़ लाए, और यहाँ

उन्हें अत्यंत निर्दयता और अपमान-पूर्वक क़त्ल कर डाला। और, शफ़ाख़ाने के हिंदोस्तानी और अँगरेज़ डॉक्टरों को शफ़ाख़ाने के अंदर क़त्ल कर डाला। इन बेचारों की लाशें तीन दिन तक बेक़ब्र और कफ़न के पड़ी रहीं। आख़िर चौथे रोज़ स्वयं विद्रोहियों ने इनको यमुनाजी में फिकवा दिया।

विद्रोहियों का बादशाह से वेतन माँगना

अब विद्रोहियों ने बादशाह से प्रार्थना की कि या तो दो महीने की तनख्वाह दो, या हमारा दैनिक वेतन नियत कर दिया जाय, यानी रसद आदि रोज़ाना दिलवा दी जाय। बादशाह ने शहर के सब महाजनों को बुलवाकर आज्ञा दी कि यदि वे सिपाहियों की माँग पूरी न करेंगे, तो सबको अपनी जानों से हाथ धोना पड़ेगा। (बेचारे बादशाह ग़रीब और मजबूर थे, इसलिये नगर की बर्बादी और क़त्लेआम को बचाने के उद्देश्य से यह हुक्म महाजनों को दिया होगा)। महाजनों ने बादशाह की सेवा में निवेदन किया कि हम इन्हें सिर्फ़ बीस दिन तक दाल-रोटी खिला सकते हैं, इससे अधिक हममें शक्ति नहीं। विद्रोही इस पर संतुष्ट न हुए, और कहने लगे—"हम तो मरने-मारने पर तुले बैठे हैं। जीवन के जो थोड़े-से दिन बाक़ी हैं, उनमें भी दाल-रोटी खायँ, यह हमसे न होगा। निदान, बादशाह ने सब बातें सुनकर चार आने दैनिक नियत कर दिए।"

इसके बाद विद्रोहियों ने नगर की नाकेबंदी कर दी, और प्रत्येक द्वार पर दो-दो तोपें चढ़ा दीं, तथा एक हज़ार मन बारूद छावनी की मेगज़ीन से उठा लाए। और, जितना गोला-

बारूद मेगज़ीन में था, उस पर अधिकार कर लिया। इस उपद्रव और मार-धाड़ के कारण नगर में रसद आनी बंद हो गई, और तमाम चीज़ें महँगी हो गईं। आटा तीन सेर, गेहूँ आठ सेर, घी १॥ सेर का बिकने लगा। इसी प्रकार सभी वस्तुएँ महँगी हो गईं। देहली के आस-पास के जितने देहाती थे, सब उठ खड़े हुए, और लूट-मार प्रारंभ कर दी। बादशाह ने झगड़ा मिटाने के अभिप्राय से गूजरों के चार-पाँच गाँवों को जलवा दिया, किंतु यह आग बुझी नहीं। सिकत्तर साहब की जो कोठी बिलासपुर में थी, वह भी लूट की भेंट चढ़ गई।

विद्रोहियों ने जब दिल्ली को अच्छी तरह लूट लिया, तब २०० सवार गुड़गाँव की तरफ़ गए, और वहाँ भी लूट-खसोट और आग लगाने का बाज़ार गर्म कर दिया। और, सरकारी खज़ाने को, जिसमें ७ लाख ८४ हज़ार रुपया था, लूटकर दिल्ली वापस आ गए। इस समय विद्रोहियों के पास देहली गुड़गाँव के खज़ानों का २१ लाख ८४ हज़ार रुपया नक़द मौजूद था, जो शाही क़िले और विद्रोही सिपाहियों की निगरानी में रक्खा गया।

इस समय देहली में ३ रेजिमेंटें थीं। एक मेरठ की और दो ख़ास दिल्ली की। नेज़ा-सवार भी मौजूद थे। बाक़ी विद्रोही सिपाहियों की सेना अलीगढ़ और आगरे की ओर रवाना हो गई। शहर में सबसे बड़ा मालदार व्यापारी लछमनचंद था,

किंतु केवल उसी की कोठी लूट-खसोट से बची हुई थी, जिसका कारण यह था कि वह प्रतिदिन विद्रोहियों की दावतें किया करता था।

आप बाती की पहली कथा

हिंदोस्तानी पैदलों की ३८वीं रेजिमेंट का एक अफ़सर अपनी विपत्ति का हाल इस प्रकार बयान करता है—११ तारीख़ को लगभग १०॥ बजे प्रातःकाल मेरा नौकर भागता हुआ मेरे कमरे में आया, और बड़ी घबराहट से कहने लगा कि शहर में बड़ी खलबली मच रही है। लोग कह रहे हैं कि मेरठ की तमाम हिंदोस्तानी फ़ौज दिल्ली पर क़ब्ज़ा करने के लिये बढ़ी चली आ रही है। सबसे पहले विद्रोह की जो ख़बर मैंने सुनी, वह यही थी—चूँकि मेरा बँगला छावनी ही में था। इसलिये मैं यह ख़बर सुनते ही इनसाइन कमियर साहब एजीटन—३८ रेजिमेंट हिंदोस्तानी के बँगले की तरफ़ पैदल चल दिया। वहाँ जाकर मैंने देखा कि कमांडिंग अफ़सर और कर्नल न्यूट साहब, दोनों उपस्थित हैं। उन्होंने भी मेरी ख़बर का समर्थन किया, और कहा कि हिंदोस्तानी प्यादों की एक रेजिमेंट नं० ५४ मय तोपों के शहर में भेजी गई है, और दो कंपनियाँ नंबरी ३८ व ७४ रेजिमेंट की पहाड़ी पर, जो शहर और छावनी के बीच में है, क़याम करेंगी। बाक़ी सिपाही इन रेजिमेंटों के किसी दूसरी जगह न भेजे जायँगे। लेकिन अपनी छावनी में हर समय सशस्त्र तैयार

रहना चाहिए। जब मैं कमांडर अफ़सर के बँगले से लौटा, तो रास्ते में मुझको नकोल साहब मिले। किंतु इनसे केवल इतना ही मालूम हुआ कि मेरठ के विद्रोही सवारों में लगभग १५० सवारों ने नावों के पुल पर अधिकार कर लिया है। और, मेरठ से आते हुए जो अँगरेज़ उनको मिला, उसे क़त्ल कर डाला।

जब मैं अपने बँगले पर पहुँच गया, तो थोड़ी देर बाद वे दोनो तोपें मेरे बँगले के बराबर से शहर की तरफ़ जाती हुई दिखाई पड़ीं, तो मुझे भरोसा हुआ कि विद्रोहियों के उपद्रव को दबाने के लिये रेजिमेंट नं० ५४ और ये दोनो तोपें काफ़ी होंगी। इसके बाद जो घटनाएँ हुईं, उनकी कभी कल्पना भी न की थी। किंतु मैंने आत्मरक्षा के विचार से ५ फ़ैरी तमंचा भर लिया, और हुक्म दिया कि गाड़ी के घोड़े तैयार रक्खो।

दोपहर के १२ बजे के लगभग मेरे नौकरों ने मुझे ख़बर दी कि दरियागंज की छावनी जल रही है। और, मेरी रेजिमेंट के अजीटन साहब और कमांडिंग अफ़सर छावनी की तरफ़ गए हैं। यह ख़बर सुनकर मैं भी सवार होकर गया, और देखा कि सिपाहियों को युद्ध-सामग्री बाँटी जा रही है। वहाँ से मैं अपनी कंपनी में गया, और सिपाहियों से बातचीत करने लगा। वे सब प्रकट में नेकचलन मालूम होते थे, और इस विद्रोह से सबने अज्ञानता प्रकट की। किंतु बहुत-

से सिपाही कमर-बंदी से अप्रसन्न प्रतीत होते थे, और कहते थे कि हम अभी शहर की साप्ताहिक नियुक्ति से वापस आए हैं। अभी अच्छी तरह रोटी-पानी से भी नहीं निपटे कि फिर हमें हुक्म दिया जाता है। इसके जवाब में मैंने कहा—संभावतः थोड़ी ही देर में विद्रोह मिट जायगा। तब आराम करना, क्योंकि एक रेजिमेंट और दो तोपें विद्रोहियों को तितर-बितर करने को भेजी जा चुकी हैं। मैंने उनसे यह भी कहा कि मैं विश्वास करता हूँ कि यदि आवश्यकता होगी, तो तुम सब लड़ोगे, और नमक का हक़ अदा करोगे। इसके जवाब में सिपाहियों ने कहा कि हमने सरकार कंपनी का नमक खाया है। हम हर तरह पर लड़ने-मरने के लिये तैयार हैं। उनमें से एक हवलदार अधिक शोर मचा रहा था, किंतु दूरदर्शिता की दृष्टि से स्पष्ट नहीं कहता था कि हम विद्रोहियों से नहीं लड़ेंगे, बल्कि यह कहता था कि कोई दुश्मन राजा बाबू आवेगा, तो उससे लड़ेंगे।

थोड़ी देर बाद दोनो कंपनियाँ, जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है, पहाड़ी की तरफ़ रवाना हुईं कि वहाँ जाकर क़याम करें। जाने के समय दोनो कंपनियों के सिपाहियों ने बहुत शोर-ग़ुल मचाया, जिस से मालूम होता था कि उन्हें बहुत प्रसन्नता है। उनकी किसी हरकत से यह संदेह न होता था कि वे विद्रोह का विचार भी करते हैं। मैं सिपाहियों के साथ बात-चीत कर रहा था, इतने में खबर पहुँची कि रेजिमेंट नंबरी ५४ ने नगर

में प्रवेश करके लड़ने से इनकार कर दिया और अपने अफ़-सरों को तीसरे रिसाला के सवारों से कटवा दिया, और ज़रा भी विद्रोहियों का मुक़ाबला न किया। जब यहाँ तक नौबत पहुँची, और मामला यहाँ तक नाज़ुक हो गया, तो सिपाहियों को तैयार होने का हुक्म दिया गया। कारतूस बाँट दिए गए। बाजेवालों को भी बंदूक़ें और लड़ाई का सामान दिया गया। सबने हुक्म की तामील की, और बंदूक़ें भरकर लड़ाई के लिये तैयार हुए। यहाँ यह हो ही रहा था कि नंबर ५४ रेजिमेंट के कर्नेल रेली डोली में आए। ज़ख्मों से उनका शरीर लोहू-लुहान हो रहा था। मैंने इन्हें स्वयं यह कहते सुना कि मुझे ख़ुद मेरे ही सिपाहियों ने संगीनें मारी हैं। इसके बाद फ़ौजी डॉक्टर साहब की ज़बानी जो हाल मालूम हुआ, वह और ज़्यादा शोक-जनक और कारुणिक था। उन्होंने सिपाहियों की बदमाशी और अफ़सरों के क़त्ल तथा रक्त-पात का हाल सुनाया, जिससे मालूम हो गया कि रेजिमेंट नं० ५४ विद्रोही हो गई। जब हालत यहाँ तक चिंता-जनक हो गई, तब अफ़सरों की परस्पर सम्मति से यह निश्चय हुआ कि जितनी तोपें और फ़ौज बाक़ी है, वह सब पहाड़ी के ऊपर जाकर क़याम करे। अलबत्ता नं० ७४ की रेजिमेंट कश्मीरी दर्वाज़े पर भेजी गई, ताकि वहाँ की गारद की मदद करे। बाक़ी तमाम फ़ौज पहाड़ी के बुर्ज पर जाकर डट गई, और दोनो तोपें इस तरह लगाईं कि उनकी ज़द उस

रास्ते पर पड़ती थी, जो शहर को जाता था। ३८ रेजिमेंट के जो बचे हुए सिपाही थे, वे बुर्ज के सीधे हाथ की तरफ़ जमा किए गए। जितने अँगरेज़ स्त्री-बच्चे वहाँ थे, सब आकर बुर्ज के अंदर जमा हो गए। और, थोड़ी देर बाद बहुत-से नगर-निवासी भी आ गए। अब हर तरफ़ से उन अँगरेज़ों की, जो शहर में रहते थे, क़त्ले-आम की ख़बरें आने लगीं। यह भी मालूम हुआ कि जितनी फ़ौज मेगज़ीन और दूसरे स्थानों पर तैनात थी, सबने सरकारी काम से इनकार कर दिया, यानी लड़ने से मुँह मोड़ लिया।

जब फ़ौज के विद्रोही हो जाने का विश्वास हो गया और हर तरफ़ विद्रोह और क़त्ले-आम का बाज़ार गर्म होने लगा, तो साहब ब्रगेडियर ने साँड़नी सवार के ज़रिए मेरठ के हाकिमों को चिट्ठी लिखी, और लगभग दस बजे हुक्म दिया कि बज़रिए तार इस विद्रोह की ख़बर अंबाले भेजी जाय। इसके बाद उपर्युक्त अफ़सर ने तमाम सिपाहियों को जमा करके उनसे पूछा कि आख़िर तुम्हें क्या उज़्र है, और तुम क्या चाहते हो? तो कुछ सिपाहियों ने कारतूस का उज़्र किया। इस पर साहब ने उन्हें समझाया और विश्वास दिलाया कि सरकार का इरादा यह कदापि नहीं कि वह किसी तरह तुम्हारे धर्म में दख़ल दे। और, फ़ौज को हरगिज़ ऐसे कारतूस नहीं दिए जायँगे, जिनसे किसी क़िस्म का मज़हब को नुक़सान पहुँचे। बातचीत चल ही रही थी और अफ़सर महोदय बराबर

सेना को समझा रहे थे, किंतु सेना का रुख़ ख़राब हो रहा था। वह अपनी नाराज़ी प्रकट कर रही थी और उनकी ओर से विश्वास नहीं हुआ था।

पहाड़ी के चारो तरफ़ सारी सेना जमा थी। मैं भी उनके पास गया, और बैठकर उनसे बातें करने लगा। सिपाहियों ने जब यह ख़बर सुनी, ५४ नं० की रेजिमेंट के तमाम अफ़-सरों को रेजिमेंट ने ख़ुद मार डाला, तो उसने बहुत खेद प्रकट किया, और कहा कि यह बात हमें बहुत बुरी मालूम हुई है। तब मैंने उनसे पूछा, तुम हमारा साथ दोगे या मुझे और मेरे बाल-बच्चों, बल्कि तमाम अँगरेज़ों को मारे जाते हुए देखोगे? इसके जवाब में बहुत-से सिपाहियों ने एक स्वर से कहा कि जहाँ आपका पसीना गिरेगा, वहाँ हम ख़ून बहावेंगे। और, जब तक मैं बैठा रहा, वे मुझसे निहायत अदब व लिहाज़ से पेश आते रहे।

पहाड़ी ऊँची जगह पर थी, इसलिये हम शहर को अच्छी तरह देख सकते थे। शहर में कई जगह आग की लपटें उठती दिखलाई पड़ती थीं। प्रकट में वे सब मकान अँगरेज़ों के मालूम पड़ते थे। इसी बीच में मेगज़ीन उड़ा, जिसे देख-कर तमाम सिपाही अपने-अपने हथियार लेकर और शोर मचाकर तथा असभ्य संकेत करते हुए दौड़ पड़े। उस समय इनको कठिनाई से रोका। मैं उस समय अफ़सरों के साथ फ़ौज के बीच में था। उस समय तक मैंने कोई गंदी बात

इनकी ज़बान से नहीं सुनी। हाँ, केवल एक सिपाही ने इतना कहा कि अब तुम्हारा नमक-पानी खाया नहीं जाता। मेग़ज़ीन के उड़ने से पहले एक गाड़ी शहर से आई। जिसमें कप्तान स्मिथ, कप्तान ब्रो, लेफ्टिनेंट एडवर्ड और लेफ्टिनेंट बावरफील्ड साहब की लाशें थीं। ये सब अफ़सर रेजिमेंट नं० ५४ के थे। इन लाशों पर मेमों के कपड़े पड़े हुए थे, जो इनकी बेकसी और इन पर निर्दय व्यवहार के सूचक थे। ब्रगेडिर साहब ने वे दोनो तोपें, जो शहर में रवाना की थीं, फिर वापस मँगाईं। मगर वापसी के वक़्त उन सिपाहियों ने बदमाशी शुरू की। जो तोपों के साथ थे, वे बजाय पहाड़ी पर आने के जहाँ दूसरी फ़ौजें पड़ी हुई थीं, सीधे छावनी का रास्ता लिया। रास्ते में कप्तान टेलर की जमात के थोड़े-से आदमी मिले, जिन्होंने कप्तान साहब को छोड़ दिया था। उन्होंने फ़ौरन् तोपों पर क़ब्ज़ा कर लिया, और कप्तान अमेन साहब कमानियर और सार्जंट को, जो तोपों के साथ थे, लड़-भिड़कर भगा दिया। ये दोनो साहब गोलियों की बारिश से किसी तरह बचकर पहाड़ी तक पहुँचे। मेरे ख़याल में, उन अँगरेज़ों में से, जो शहर में फ़ौज के साथ गए थे, ये ही दो बचे थे।

विद्रोही सिपाही तोपें छीनकर शहर की तरफ़ जा रहे थे। चूँकि पहाड़ी पर से सब दिखाई पड़ता था, इसलिये कप्तान डी० टेस्टर साहब ने जो तोपों को नगर की ओर जाते देखा, तो वह घोड़े पर सवार होकर इस अभिप्राय से गए कि उनको

पहाड़ी पर वापस लाएँ, किंतु विद्रोहियों ने उन्हें आते देखा, तो गोलियों की भरमार कर। दी निदान साहब का घोड़ा ज़ख्मी हुआ, और साहब किसी तरह भागकर बचे।

ये विद्रोही जब नगर के निकट पहुँचे, तो दैवयोग से डिप्टी-कलक्टर करंभरा साहब पर उनकी दृष्टि पड़ी, और उन पर भी गोलियाँ बर्सानी शुरू कर दीं, मगर उन्होंने भाग-कर जान बचाई।

धीरे-धीरे दिन-भर में बहुत-सी युद्ध-सामग्री बुर्ज में जमा हो गई थी, और हमको पूरी आशा थी कि यदि तोपख़ाना बिगड़ न गया और बराबर काम देता रहा, तो जब तक मेरठ से कुमुक पहुँचे, हम तमाम अँगरेज़, सार्जंट और ईसाई यहाँ बुर्ज में पूरी रक्षा के साथ रह सकते हैं। किंतु यह मालूम न था कि भाग्य मेरठ में क्या गुल खिला रहा है।

दिल्ली से विदा

किंतु जब सब तरफ़ से आशा जाती रही, और कोई सहारा न रहा, तो लाचार तमाम जंगी अफ़सरों की सम्मति से यह निर्णय हुआ कि मेरठ चलना चाहिए। निदान तमाम स्त्रियाँ और वे लोग, जो लड़ने के योग्य न थे, सबको बग्घियों में सवार कराकर वज़ीराबाद के घाट से, जो छावनी से क़रीब था, जमना पार उतारकर रवाना कर दिया। बग्घियाँ और दोनो तोपों को-

लेकर कप्तान डो० टेस्टर आगे बढ़े, और पैदल फ़ौज इनके पीछे चली। हिंदोस्तानी सिपाही जितने साथ थे, सब अत्यंत बेदिली से धीरे-धीरे चल रहे थे।

जब पहाड़ी से आए, तो हमने देखा कि बग्घियाँ और तोपें कर्नाल के रास्ते पर जा रही हैं, और वज़ीराबाद के रास्ते को छोड़ दिया है। मैं अपने सिपाहियों के साथ पैदल चल रहा था, इसलिये कि मेरा घोड़ा मेरे साथ न था। मेरे सिवा और भी बहुत-से अफ़सर पैदल थे। जब हम अपनी लाइन के निकट पहुँचे, तो तमाम सिपाही उच्छृंखल होकर लाइन में चले गए। मेरा बँगला भी निकट था, इसलिये मैं भी वहाँ चला गया, और घोड़े को तैयार पाकर उस पर सवार हो लाइन में आया, और सिपाहियों से पूछा, क्या तुम मेरे साथ चलने के लिये राज़ी हो? मगर सिपाहियों ने कुछ जवाब न दिया। किंतु प्रकट में ऐसा मालूम होता था कि मेरा बोलना भी इन्हें विष लगता है। उस समय तमाम सिपाही छोटे-छोटे झुंडों में पृथक्-पृथक् बैठे थे। केवल एक सिपाही बदचलन मालूम होता था, जिसने मुझको अत्यंत कड़ा, उद्धत और बेहूदा जवाब दिया। इसके बाद मैं कर्नाल की तरफ़ चला, ताकि गाड़ियों से जा मिलूँ। किंतु थोड़ी दूर जाकर वे दोनो तोपें, जो गाड़ियों के साथ थीं, देहली की तरफ़ आती मुझे मिलीं। वापस इसलिये आ रही थीं कि गोलंदाज़ों ने कर्नाल जाने से इनकार कर दिया था।

मुझे बहुत-से घायल अफ़सर रास्ते में मिले, जो बेतहाशा कर्नाल की ओर भागे जा रहे थे। मैंने इनको एक स्वर से यह कहते सुना कि अब कुछ बाक़ी नहीं, और किसी तरह कोई बचाव की जगह ढूँढ़ना चाहिए।

दूसरी कथा

जब दिल्ली में विद्रोहियों के घुस आने और अँगरेज़ों के क़त्ल करने, इमारतों के जलाने-ढहाने और महसूलख़ाना मीरबहर को ढा देने की ख़बरें छावनी में पहुँचीं, तो जंगी अफ़सरों ने तमाम फ़ौज को तैयार होने का हुक्म दिया। सबसे पहले ५४ नंबर की रेजिमेंट हिंदोस्तानी पैदलों की तैयार हुई, क्योंकि यह शहर के हाकिमों से निकटतर थी। इस रेजिमेंट में से ६ कंपनियाँ कर्नल रेली साहब की अधीनता में कश्मीरी दर्वाज़े पर विद्रोहियों के रोकने को गईं, और दो कंपनियाँ मेजर टिप्रेंस की अधीनता में तोपों के साथ जाने के लिये खड़ी रहीं। कर्नल रेली साहब चूँकि विद्रोह की वास्तविकता से भिज्ञ न थे, और केवल साधारण विद्रोह समझे हुए थे, इसलिये अपनी फ़ौज को ख़ाली बंदूक़ों के साथ ले गए थे कि संगीनों के ज़ोर से विद्रोहियों को दबा देंगे। किंतु जब यह फ़ौज शहर के निकट पहुँची, तो दैवयोग से कुछ विद्रोही सवार दृष्टि पड़े, जिन्होंने आते ही अफ़सरों पर हमला कर दिया। और, सिपाहियों से कहा, हम तुमसे कुछ नहीं कहते, और न बाधा डालना चाहते हैं। चूँकि बेचारे अफ़सरों को इस विद्रोह की वास्तविकता की ख़बर न थी,

और न वे इसे इतना संगीन समझते थे, इसलिये वे सब फ़ौज के आगे थे। इस वजह से विद्रोहियों ने सबसे पहले अफ़सरों पर वार किया, और कारवाइन गोलियाँ बरसानी शुरू कीं। कर्नल रेली के पहले तो गोली लगी, फिर विद्रोहियों ने तलवारों से उसे काट डाला। कर्नल के सिवा और भी दो-तीन अफ़सर गोलियों से घायल हुए। अफ़सरों ने बहुत कुछ सिपाहियों से अनुनय-विनय की कि हमको बचाओ, किंतु फ़ौज ने कुछ न सुनी। न बंदूकें भरीं, न विद्रोहियों से मुक़ाबला करने की चेष्टा की, बल्कि इसके विरुद्ध कुछ धोकेबाज़ सिपाहियों ने उल्टे कर्नल रेली को संगीन के ज़ख़्म पहुँचाए। इस हंगामे में कप्तान डविलस, जो एक सप्ताह के लिये शहर पर तैनात किए गए थे, पहुँच गए। उन्होंने अपनी गारद को फ़ैर करने का हुक्म दिया। किंतु दुर्भाग्य देखिए कि इन बदज़ातों ने भी साफ़ इनकार कर दिया। यद्यपि साहब ने डरा-धमकाकर और अनुनय-विनय सभी तरह से कहा, पर इन पर कुछ असर न हुआ, वे बेहूदा इशारे करते और ताने मारते रहे। जब साहब ने बहुत ख़ुशामद से कारण पूछा, तो विद्रोहियों के ढंग पर कहने लगे कि "साहब, हम उन लोगों के लिये कुछ नहीं कर सकते, जिन्होंने हमारे मज़हब को ख़राब करने का इरादा कर लिया था, और चाहते थे कि हिंदू-मुसलमान दोनो के मज़हब और उनकी जातें ख़राब हो जायँ। निदान इसी तरह बकते-बकाते और असत्य अभियोग सरकार पर

लगाते रहे। अंत में कहने लगे कि हम इसका बदला अब लेंगे। इस बीच में ५ अफ़सर, जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है, मारे गए। कई ज़ख़्मी हुए, और एक सिपाही भी ज़ख़्मी हुआ।

जब विद्रोहियों ने देखा कि सरकारी फ़ौज ने उनका मुक़ाबला नहीं किया, और अपने अफ़सरों के हुक्म के विरुद्ध लड़ने से इनकार कर दिया, तो वे कश्मीरी दर्वाज़े की तरफ़ चले, जहाँ एक छोटा-सा मोरचा बना हुआ था, जिसमें गारद रहता था कि वहाँ जाकर क़ब्ज़ा कर लें, परंतु सौभाग्य से वहाँ लेफ्टिनेंट विलसन के अधीन दो कंपनियाँ रेजिमेंट नं० ५४ की और एक तोपख़ाना पहुँच गया, जिसकी वजह से बदमाश विद्रोही फिर नगर की तरफ़ वापस लौट आए।

इस धोकेबाज़ी और दग़ा की ख़बर लगभग ११ बजे छावनी पहुँची, जिसके सुनते ही ७४ रेजिमेंट के हिंदोस्तानी सिपाहियों को जमा किया गया। उसमें सिर्फ़ १५० आदमी मौजूद थे, बाक़ी भिन्न-भिन्न मोर्चों पर पहले ही से बाँटकर नियुक्त कर दिए गए थे। इनको मय दो तोपों के कुमुक के इरादे से मेजर एबट की अधीनता में नगर की तरफ़ रवाना किया गया।

इन सिपाहियों की नमकहरामी को और एक हरकत देखिए—कितनी लज्जास्पद है—जब सिपाहियों के विद्रोह की ख़बर ज्ञात हुई, तब ३८ नंबर की रेजिमेंट का बाक़ी हिस्सा और ५४ नंबर की रेजिमेंट के सिपाही परे

पर तलब किए गए। ब्रगेडियर साहब ने हरएक कमान-अफ़सर से कहा कि वह अपने-अपने सिपाहियों का इरादा और उनके ख़यालात इस तरह से दरयाफ़्त करे कि उनको बुलाकर स्वयं-सेवक बनने को कहा जाय। यदि वे स्वयं प्रार्थना करके सेना में शरीक हों, तो समझना चाहिए कि सरकारी सेवा के लिये तैयार हैं, और यदि ऐसा न करें, तो समझना चाहिए कि राजभक्त नहीं। यही किया गया, और आज्ञानुसार तमाम सिपाही परेड में जमा हो गए, मगर ३८ नं० की रेजिमेंट का एक सिपाही भी अपनी जगह से तिल बराबर न सरका। हाँ, ७४ नं० की रेजिमेंट के सिपाहियों ने आज्ञा-पालन की, और अपनी-अपनी बंदूकें भर लीं, तथा नगर की तरफ़ विद्रोह शांत करने और प्रबंध के लिये चल दिए। फलतः थोड़ी देर में कश्मीरी दरवाज़े पर पहुँच गए। समय बीत गया था, इसलिये इनका वहाँ जाना व्यर्थ हुआ, क्योंकि विद्रोही वहाँ से चले गए थे। इसलिये इनसे सिवा इसके कोई लाभ न हुआ कि वह वहाँ जाकर ठहर गए।

अब विद्रोहियों का कहीं पता-निशान न था, और न किसी ने बताया कि कहाँ गए। बहुत-से ७४ नं० की रेजिमेंट के सिपाही भी ग़ायब थे। सिर्फ़ दो कंपनियाँ मेजर पीटर्स के अधीन वहाँ मौजूद थीं। थोड़ी देर बाद अफ़सरों की लाशें गाड़ी पर लाई गईं, जिनके ऊपर उनकी स्त्रियों के गाउन इत्यादि पड़े हुए थे, जिससे इनकी दुर्दशा का पता चलता था।

जब नं० ७४ की रेजिमेंट शहर चली गई, तो कप्तान डी० टेस्टर मय दो तोपों के पीछे रह गए। और, उन्होंने इस बात की चेष्टा की कि जल्दी से आगे बढ़कर उस विस्तृत स्थान पर अधिकार कर लें, जिसके एक तरफ़ पक्की सड़क थी, जो छावनी को जाती थी, दूसरा रास्ता पहाड़ी को जाता था। निदान बड़ी कठिनाई से उक्त साहब ने ३८ नं० की रेजिमेंट को रास्ते पर अधिकार करने और उसे घेरने को भेजा। इनका अभिप्राय यह था कि कप्तान डी० टेस्टर साहब की तोपों पर क़ब्ज़ा कर लें।

उपर्युक्त कप्तान हर चंद हिकमत अमली से यह चाहते थे कि इनकी तोपों के निकट सिपाही एकत्रित न हों, किंतु फिर भी चार-पाँच सिपाही गोलंदाज़ों के आस-पास घूमते रहे।

क़रीब १२ बजे दिन के पहाड़ी पर का बुर्ज अँगरेज़ों, मेमों और दूसरे ईसाइयों से भर गया, और इतना कोलाहल हो रहा था कि किसी तरह का प्रबंध होना संभव न था। कोई मनुष्य किसी प्रकार की शिक्षा या आज्ञा न मानता था। इसी समय एक सार्जंट ने ख़बर दी कि उन्होंने एक बिगुलवाले से सुना है कि ३८ नं० के सैनिक कहते हैं कि अगर तोपों की एक आवाज़ भी हुई, तो ३८ नं० की रेजिमेंट के समस्त सिपाही फिर जायँगे, और अँगरेज़ों को क़त्ल कर डालेंगे।

शाम हो रही थी, और समय व्यतीत होता जाता था। शहर में चारो तरफ़ आग-ही-आग दिखाई देती थी।

सायंकाल के निकट नगर में एक बड़े ज़ोर की आवाज़ हुई। यह शब्द मेगज़ीन के उड़ने का था। सिपाहियों ने यह शब्द सुना, तो बिगड़कर बोले कि जरनैल, यह क्या बात है, जो हमारे आदमियों को इस तरह मारा जाता है। कप्तान डी० टेस्टर साहब ने फिर कश्मीरी दरवाज़े की तोपों को वापस लाने का हुक्म दिया। थोड़ी देर बाद फिर हुक्म हुआ कि मेजर एबट साहब ७४ नं० की रेजिमेंट को वापस लावें। यद्यपि थोड़ी देर बाद दोनो तोपें बड़े रास्ते पर नज़र आईं, गोया छावनी की तरफ़ जा रही थीं। कप्तान डी० टेस्टर साहब ने यह देखकर बिगुल बजाया कि वह आकर पहाड़ी पर इनके साथ शामिल हों। मगर वह न फिरे, तब कप्तान साहब समझे कि शायद उन्होंने बिगुल की आवाज़ नहीं सुनी। इतनी देर में तोपें ३८ नं० की पल्टन की एक टुकड़ी के क़रीब जा पहुँचीं। और, उनके पहुँचते ही बंदूक़ों के चलने की आवाज़ आने लगी, और तोपें शहर की तरफ़ मुड़ती नज़र आईं। कप्तान साहब यह देखते ही फ़ौरन् घोड़े पर सवार होकर तोपों की तरफ़ गए कि इनको वापस ले आवें। जब वह पास पहुँचे, तो हुक्म दिया कि दाहनी तरफ़ से होकर जल्दी हमारे पास आ जाओ। मगर जब मेजर साहब निकट पहुँचे, तो बहुत-से सिपाहियों ने बंदूक़ें उनकी तरफ़ कीं, और ६ फ़ायर कर दिए, जिनमें से तीन तो ख़ाली गए, और तीन गोलियाँ घोड़े के लगीं। मगर उसमें इतनी ताक़त बाक़ी थी कि साहब को

बुर्ज तक पहुँचा दिया। बुर्ज पर पहुँचकर घोड़ा ज़मीन पर गिरकर मर गया, और दोनो तोपें तथा सिपाही शहर की तरफ़ चले गए।

तदनंतर जब लेफ़्टिनेंट ग्लोवी साहब भी आ गए, तो मेजर एबट साहब ने ७४ नं० की एक पल्टन को इसलिये रवाना किया कि वह जाकर यह ख़बर लाए कि मेगज़ीन के उड़ने से जो रास्ता हो गया है, उसमें से वह आगे बढ़ते हैं या नहीं। मगर वहाँ विद्रोहियों का इस क़दर इलाज हो गया था कि वे भयभीत होकर सब-के-सब शहर को भाग चले।

उस समय ३ बजे होंगे, और कश्मीरी दरवाज़े में विद्रोहियों का कोई पता-निशान न था। इस बीच में छावनी से हुक्म आया कि २ तोपें छावनी को वापस भेज दी जायँ। अतः लेफ़्टिनेंट एस्प्लेसो साहब के साथ तुरंत तोपें रवाना कर दी गईं। मेजर एबट साहब नें अब यह इरादा किया कि जो मेमें गारद के आश्रित निवास-स्थान में हैं, उनको छावनी रवाना कर देना चाहिए। यह सोचकर आज्ञा दी कि गाड़ी तैयार की जाय। थोड़ी देर बाद वे ही दोनों तोपें, जो छावनी भेजी गई थीं, कश्मीरी दरवाज़े फिर वापस आ गईं। मगर लेफ़्टिनेंट और गोलंदाज़ उनके साथ न थे। तोपें भरनेवालों ने आकर बयान किया कि गोलंदाज़ तोपें छोड़ भाग गए हैं, और हम बग़ैर उनके छावनी न जायँगे। आख़िर तीन-तीन, चार-चार सिपाही मिलकर तोपों के साथ दरवाज़े के अंदर आए।

अनुमानतः साढ़े तीन बजे के ब्रगेडियर साहब का हुक्म
मेजर एबट साहब के नाम इस वृत्त-संबंधी आया कि जिस
क़दर नं० ७४ रेजिमेंट के सिपाही उनके साथ हों, उनको
लेकर बहुत जल्द छावनी पहुँच जायँ। जब यह हुक्म आया,
तो मेजर टीप्रेंस और डिप्टी-कलेक्टर साहब ने कहा कि
इस समय इस रेजिमेंट का यहाँ से जाना उचित नहीं, क्योंकि
जब तक वहाँ इनके स्थानापन्न सिपाही न हों, तब तक इसको
छोड़ना ठीक नहीं। मगर डिप्टी-कलेक्टर साहब को दूसरा
भय था। वह ७४ नं० की रेजिमेंट का हाल देख चुके
थे, और इनके रंग-ढंग अच्छे न थे। परंतु मेजर एबट साहब
ने कहा, चूँकि हुक्म ख़ास तौर से मेरे नाम आया है, इस
कारण उसका पालन मैं आवश्यक समझता हूँ। पर डिप्टी
साहब ने कहा, आप थोड़ी देर ठहरिए, मैं ख़ुद छावनी जाकर
ब्रगेडियर साहब से यहाँ ठहरने की आवश्यकता वर्णन
करता हूँ। अगर मान गए, तो अच्छा है, अन्यथा आज्ञा का पालन
किया जायगा। अस्तु। यह कहकर सवार हो गए। तोपें
पहले ही वापस आ चुकी थीं। डिप्टी-कलेक्टर साहब ने उनसे
कहा, अब तुम हमारे साथ चलो, और चूँकि बहुत-सी मेमें
मौजूद थीं, और वह गाड़ी अब तक नहीं आई थी, जिसके लिये
हुक्म दिया गया था, इसलिये तोपख़ाने की एक पेटी ख़ाली
कर दी गई, और सब उसमें सवार करा दिए गए, और छावनी
को रवाना हो चले।

अब डिप्टी साहब को गए देर हो चुकी थी, इसलिये मेजर एबट साहब ने ज्यादा देर करना उचित न समझा। इस बात का समर्थन एक हवल्दार ने भी किया, और कहा कि उसने भी छावनी की तरफ़ बंदूक़ों की आवाज़ें सुनी हैं। अब यहाँ ज्यादा देर करना किसी प्रकार योग्य नहीं। तब मेजर साहब ने फ़ौज की तैयारी का हुक्म दिया और चल दिए। क़रीब सौ क़दम दरवाज़े से बाहर गए होंगे कि ३८ नं० की रेजिमेंट के सिपाही दरवाज़े के अंदर घुस गए, और दरवाज़ा बंद कर दिया। तब उन्हीं बदमाश सिपाहियों ने ऑफ़िसरों पर, जो अब तक बाहर न निकल सके थे, गोलियाँ बरसानी शुरू कर दीं। इस धोके और विश्वासघात के फल-स्वरूप ७४ नं० की रेजिमेंट के कप्तान कोर्ट साहब सबसे पहले मारे गए। एक सिपाही ने पीछे से गोली मारी, और वह तत्काल मर गए। इसके बाद लेफ़्टिनेंट रोवली साहब इस रेजिमेंट में बहुत ज़ख्मी हुए। मगर उन्होंने मरते-मरते अपनी दुनाली बंदूक़ विद्रोहियों पर सर कर दी, जिससे दो-एक विद्रोही मारे गए। इस समय ७४ नं० रेजिमेंट के इनसाइन रोलीयन ने यह हाल देखा, तो वहाँ से भागे, और दीवार फाँदकर ख़ंदक में कूद पड़े, और दूसरी पटरी पर चढ़कर जंगल के रास्ते से छावनी को रवाना हो गए। सबको रास्ते में मेजर पिटर्सन मिले, जो ७४ नं० रेजिमेंट के साथ दरवाज़े से बाहर निकल गए थे। दोनो साहब छ बजे

के क़रीब छावनी पहुँचे। मेजर एबट साहब ने बंदूक़ों की आवाज़ सुनी, तो अपने सिपाहियों से पूछा, यह क्या हो रहा है। उन्होंने जवाब दिया, ३८ नं० की पल्टन के सिपाही अपने ऑफ़िसरों को मार रहे हैं। यह सुनकर मेजर साहब ने हुक्म दिया कि वापस चलकर ओहदेदारों को मदद करो। किसी ने हुक्म न माना, और तमाम ख़ुशामद व चापलूसी मेजर साहब की बेकार गई। सिपाहियों ने कहा, यही बहुत है कि हमने तुमको बचा लिया। हमसे वहाँ जाकर कुछ न होगा, बल्कि तुम्हें भी खो बैठेंगे। यह कहकर बहुत-से सिपाही मेजर साहब के आस-पास जमा हो गए, और ज़बरदस्ती उनको छावनी के अंदर ढकेल ले गए। मालूम हुआ, सिपाहियों ने बड़ी निर्दयता से ऑफ़िसरों पर गोलियाँ बरसाईं। लेफ़्टिनेंट स्मिथ साहब पहले तो ४ सिपाहियों के हाथ से बच गए थे, पर पीछे गुलज़ारसिंह सिपाही के हाथ से मारे गए। कारण यह कि तमाम सिपाहियों ने इस मनुष्य को ख़ास तौर से स्मिथ साहब को क़त्ल करने की गरज़ से तैनात किया था, इसलिये साहब ने इस सिपाही को ग़फ़लतन आज्ञा उल्लंघन करने के आधार पर ओहदे से हटा दिया था। इसके अलावा लेफ़्टिनेंट असनोरी साहब भी ज़ख़्मी हुए थे, और फ़ोर्ट साहब की मेम के सीने पर गोली लगी थी। बाक़ी जितने ओहदेदार तथा औरतें थीं, वे दीवार पर चढ़ गई थीं, इसलिये विद्रोहियों ने गोलियाँ चलानी

बंद कर दी थीं। अब वह ख़ज़ाने लूटने की ग़रज़ से रवाना हो गए थे। मगर चलते-चलते जितनी तोपें थीं, सबका मुँह इन ग़रीबों की तरफ़ करके सर कर दिया, मगर ईश्वर की कृपा से किसी को नुक़सान नहीं पहुँचा, यद्यपि सिर्फ़ चालीस गज़ का फ़ासला था। जब इन ग़रीबों को दम लेने की फ़ुरसत मिली, तो सब ख़ंदक़ में उतरकर और पार जाकर मटकल्फ़ साहब की कोठी में पहुँचे। वहाँ सौभाग्य से खाना तैयार था, बेचारे दिन-भर की भूख से व्याकुल थे, बैठकर खाना खाया। यद्यपि पेट भरकर न मिल सका, तो भी दूसरे ओहदेदारों से अच्छे रहे, जिनको सुबह से कुछ न मिला था, और न फिर कभी मिलने की संभावना थी।

मेजर एबट साहब शाम के क़रीब अपने रेजिमेंट के काटर में गए। वहाँ इनके सिपाहियों ने सम्मति कर यह निश्चित किया कि साहब यहाँ से अन्य स्थान में चले जायँ, तो अत्युत्तम हो; और अत्यंत विनीत भाव से कहा कि आप यहाँ से चले जायँ, क्योंकि यदि ३८ नं० की रेजिमेंट के सिपाहियों ने सुन लिया या देख लिया कि आप यहाँ छिपे हुए हैं, तो वे आपको क़त्ल कर डालेंगे, और हमसे कुछ न हो सकेगा, हम आपको न बचा सकेंगे। यह कहकर कुछ सिपाही घोड़ा लेने के वास्ते छावनी गए। इस बीच में बहुत-सी गाड़ियाँ कर्नाल की तरफ़ जाती और भागती हुई नज़र आईं। यह देखकर सिपाहियों ने कहा कि देखो, बहुत-से ऑफ़िसर, मेमें और साहबान कर्नाल जा रहे

हैं, आप भी उनके साथ चले जाइए। अत्यंत करुणार्द्र स्वर से रोकने के लिये इन्होंने चेष्टा की, पर वह शायद इस ख़याल से नहीं रहे कि विद्रोही धोका देने की नियत से न ठहराते हों।

अनंतर कप्तान हाकी साहब घोड़े पर आगे की ओर सवार हुए, और मेजर साहब को अपने पीछे सवार करके ले चले, और इन्हें दोनो तोपों तक पहुँचा दिया, जो कर्नाल जा रही थीं। पहिए पर बैठकर मेजर साहब ४ मील तक गए, मगर आगे न जा सके, क्योंकि ड्राइवरों ने जाने से इनकार कर दिया, और दोनो अँगरेज़ों को रास्ते में ही उतार दिया। सौभाग्य से कप्तान डग्लस साहब गाड़ी पर सवार आ उपस्थित हुए, और दोनो साहबों को अपने साथ बिठलाकर रवाना हो गए।

देहली से जितनी गाड़ियाँ और बग्घियाँ चोरी-छिपे जान बचाकर भाग निकली थीं, जिनमें बहुत-से अँगरेज़-अफ़सर और उनके बाल-बच्चे थे, सब करनाल पहुँच गईं। रास्ते में सिर्फ़ एक जगह देहली से लगभग ४० मील के फ़ासले पर ठहरे थे। चूँकि यहाँ डाक-बँगला था, इसलिये खाना खाने के विचार से उतर पड़े थे। अंततः ये लोग सकुशल करनाल पहुँच गए, किंतु कर्नल न्यूट और उनके साथ भगे हुए लोग बेचारे अवश्य मैदानों में भटक रहे थे। अंत में तीसरा रिसाला लेफ्टिनेंट गफ़ और लेफ्टिनेंट मेकंज़ी की अधीनता में इधर आ निकला, और इसने इन्हें रक्षा में ले लिया। इस दल में—जो भटक रहा था—कर्नल न्यूट लेफ्टिनेंट प्रोक्टर, मेकर ३८ रेजिमेंट के और

लेफ्टिनेंट विलसन तोपख़ाने के और लेफ्टिनेंट साल कील्ह साहब इंजीनियर लेफ्टिनेंट वालमार्ट ५४ रेजिमेंट के, लेफ़्टिनेंट जे फोर्ट मेगज़ीनवाले मय अपनी स्त्री और तीन लड़कियों के और फ्रेज़र साहब की स्त्री शामिल थीं। ये सब कोहनताली-नामक आदमी के बहुत आभारी हैं, जो हरचंदपुर में रहते हैं, और डेविस साहब के रिश्तेदार हैं, जिनको बेगम शमरू ने अपना पुत्र बनाया था। कोहन साहब ने इन सब लोगों की बड़ी ख़ातिरदारी की, और अपनी रक्षा में रक्खा।

१२ मई २ बजे के लगभग नीचे लिखे लोग बाग़पत पहुँचे, जहाँ इस क़स्बे के नंबरदार ने इन सबकी ख़ूब मेहमानदारी की। इनके सिवा जो भी अँगरेज़ इधर आ निकला, उसकी सेवा-सुश्रूषा में कोई कसर उठा नहीं रक्खी। बाग़पत में इन लोगों ने खाना खाया, और मेरठ की तरफ़ रवाना हो गए। सूर्य छिपते-छिपते मेरठ पहुँच गए। इस दल में सपत्नीक कप्तान बिल्सन, कप्तान हाकी इनसाइन मिल्टन हिंदोस्तानी ७४ रेजिमेंट, कप्तान, डो०टेस्टर स्त्री-सहित मिस हिचिनस और मरफी साहब कलक्टर कस्टम अपनी माता-सहित और हेली साहब बाल-बच्चों सहित थे।

एक दूसरा दल जिसमें लेफ्टिनेंट होज़वेल एडचेकिनेन् और लेफ्टिनेंट रेज़, एज़ लो साहब-सहित तथा लेफ्टिनेंट ड्यूली भी थे। इनका कहीं पता-निशान न लगा। मालूम होता है, देहातियों के साथ मारे गए। लेफ्टिनेंट ड्यूपुली, लेफ्टिनेंट फ़ारेस्ट और

लेफ्टिनेंट रेञ्ज साहब तथा दूसरे अँगरेज़ों ने मेगज़ीन के बचाने और रक्षा में बड़ी वीरता से काम लिया। किंतु कुछ लोग मेगज़ीन के अंदर दग़ाबाज़ थे। तथा बाहर विद्रोहियों का बड़ा जमघंट हो गया था, इसलिये मेगज़ीन की रक्षा न हो सकी। उसमें आग लगा दी गई। इस मार-काट में कुछ अँगरेज़ भाग निकले थे। इनके सिवा एक लेफ्टिनेंट फ़ारेस्ट साहब थे, इन्हीं की चिट्ठी से मेगज़ीन की रक्षा का हाल मालूम हुआ, जो नीचे लिखा जाता है—

मेगज़ीन उड़ने की घटना

११ मई सुबह ७-८ बजे के बीच सर थी ओफ़लस मेटकाफ़ साहब मेरे मकान पर आए, और कहा, मेगज़ीन में चलकर दो तोपें निकलवाकर पुल पर भेज दो, ताकि विद्रोही जमना को पार न कर सकें। मैं इनके साथ मेगज़ीन आया। यहाँ लेफ्टिनेंट ड्यूली, लेफ्टिनेंट रेज़, मय कंडक्टर एकली साहब, शावकली साहब और एकटिंग सब कंडक्टर कटरो साहब और सार्जंट एडवर्ड और स्टुअर्ट अपने हिंदोस्तानी अमले के साथ उपस्थित थे। सर थी ओफ़लस अपनी गाड़ी से उतरे, और मैं और लेफ्टिनेंट ड्यूली साहब इनके साथ बुर्ज पर गए, जो जमना की तरफ़ था। यहाँ से पुल साफ़ नज़र आता था। वहाँ पहुँच-कर देखा, तो विद्रोही पुल पार कर रहे थे।

यह देखकर सर थी और मेटकाफ़ साहब लेफ्टिनेंट ड्यूली साहब को साथ लेकर शहरपनाह का दरवाज़ा देखने गए कि

वह बंद कर दिया गया है या नहीं। अस्तु। तमाम दरवाज़े खुले हुए थे, और विद्रोही बड़ी प्रसन्नता से क़िले के दरवाज़ों में घुस रहे थे, और शाही मकानों तक पहुँच गए थे। जब लेफ़्टिनेंट ड्यूली साहब वापस आए, तो उन्होंने मेगज़ीन के दरवाज़े बंद कराकर तेगे लगवा दिए, और दरवाज़े के भीतर दो तोपें ६ पन्नी की दुचंद गराब भरवाकर एक्टिंग सब कंडक्टर साहब और सार्जंट स्टुअर्ट साहब की अधीनता में रखवा दी गईं। और, इन लोगों को बत्तियाँ देकर हुक्म दिया गया कि अगर विद्रोही दरवाज़े के भीतर घुसें, तो दोनो तोपें सर कर दी जायँ। मेगज़ीन का बड़ा दरवाजा भी इसी तरह दो तोपों से मज़बूत कर दिया गया, और दरवाज़े के अंदर गोखरू बिछा दिए गए। दूरदर्शिता और रक्षा के विचार से और दो तोपें इस तरह रख दी गईं कि इनका गोला दरवाज़े और बुर्ज तक पहुँचता था। इसके सिवा दरवाज़ों और सामान के दफ़्तर के बीच रास्ता था। इन दोनो रास्तों पर ३-३ ६ पन्नी और २४ पन्नो का गुब्बारा इस तरस गाड़ दिया कि जिधर चाहें घुमाकर आस-पास के मकानों की रक्षा कर सकें। जब गुब्बारा और तोपें लगा दी गईं, तो इन सबमें दूने गराब छर्रे भरवा दिए गए। अभिप्राय यह कि जहाँ तक संभव था, रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध करके हिंदोस्तानी अमले को हथियार बाँटे जाने लगे। किंतु उन लोगों ने बिल्कुल नाराज़ी से लिए, पर किसी प्रकार की घबराहट उनके चेहरों पर नहीं पाई जाती थी।

इसके बाद कंडक्टर एकलो साहब और सार्जंट स्टुअर्ट ने एक शितावा लगाया। इनको यह हुक्म था कि जब लेफ्टिनेंट के हुक्म से कंडक्टर युकली साहब अपनी टोपी सिर से उठावें, उसी समय शितावे में आग दे दे। निदान, साहब ने यह शितावा उड़ाया, किंतु उस समय जब कि एक-एक गोला गुब्बारे का चल चुका था। इस बीच में क़िले से गारद आया, और मेगज़ीन पर शाह-देहली के नाम से अधिकार करना चाहा। इसका कुछ जवाब इधर से न दिया गया। इसके बाद मेगज़ीन के गारद के सूबेदार लेफ्टिनेंट ड्यूपुली साहब को इत्तिला दी गई कि शाह-देहली ने विद्रोहियों को कहला भेजा है कि हम ज़ीने भेजते हैं, जिनसे तुम लोग मेगज़ीन की दीवारों पर चढ़ जाओ। निदान, थोड़ी देर में ज़ीना आ गया, और उसको लगाकर तमाम हिंदोस्तानी अमला दीवारों पर चढ़कर बाहर उतर गया। अनंत विद्रोही घुस आए। हमारे पास जब तक गोला-बारूद रहा, ख़ूब मुक़ाबला करते रहे। फलतः विद्रोहियों की बहुत हानि हुई, पर वे बहुत अधिक थे, और रंजक के तोड़दान हिंदोस्तानी सिपाही विद्रोहियों में से पहले छिपाकर रख गए थे, इसलिये विवश हो मेगज़ीन उड़ा देना पड़ा।

हिंदोस्तानी अमले में से रहीमबख़्श-नामक एक व्यक्ति विद्रोहियों से मिला हुआ था। वह मेगज़ीन के दरवाज़ों का दरबान था। यह आदमी बाहर विद्रोहियों को भीतर का हाल

बता दिया करता था। यह बार-बार अंदर आता-जाता था, और सब हाल कह देता था। लेफ्टिनेंट ड्यूली साहब इसके बेहूदा रंग-ढंग से इतने तंग हो गए कि मजबूरन् हुक्म दे दिया था कि यदि यह फिर बाहर जाय, तो इसे गोली मार दी जाय।

लेफ्टिनेंट रेज़ ने दूसरे अँगरेज़ों के साथ मेगज़ीन की रक्षा के लिये यथासंभव समस्त उपाय कर डाले। कंडक्टर निकल साहब ने जितनी तोपें थीं, वे कम-से-कम चार दफ़ा सर कीं, और इस दृढ़ता और धैर्य के साथ कर्तव्य-पालन किया, मानो परेट पर काम कर रहे हों। यद्यपि विद्रोही ४०-५० गज़ के अंतर पर थे, और चारो तरफ़ से गोलियाँ बरसा रहे थे। जब गोला-बारूद खत्म हो गया, उस समय कंडक्टर के कोहनी से ज़रा ऊपर एक गोली आकर लगी, जो बाद में निकाल ली गई। इसके बाद दो गोलियाँ मेरे भी लगीं। इस लड़ाई और घावे के बाद लेफ्टिनेंट ड्यूली ने मेगज़ीन को उड़ा देने की आज्ञा दी, जिसकी तामील कंडक्टर निकल साहब ने फ़ौरन् की। तमाम शतावों में आग लगा दी। यद्यपि कोई ऐसा आदमी न था, जिसे कुछ-न-कुछ चोट न लगी हो, परंतु जान से बच गए। और, उन रास्तों से, जो मेगज़ीन के उड़ने से दीवारों में बन गए थे, जमना की ओर बाहर आ गए। लेफ्टिनेंट ड्यूली और मैं जान सलामत लेकर कश्मीरी दरवाज़े तक पहुँच गए। मैं नहीं कह सकता कि औरों के साथ क्या हुआ। लेफ्टिनेंट रेज़ साहब और कंडक्टर एकली साहब

जान सलामत बचा लाए। सार्जंट मोयल साहब मेगज़ीन की रक्षा व सहायता को आ रहे थे कि विद्रोहियों ने मार्ग ही में इन्हें मार डाला। इस घटना के विषय में ५४ नं० रेजिमेंट के एक और अफ़सर की चिट्ठी भी नीचे दी जाती है।

११ मई, शनिश्चर के दिन दिल्ली की तमाम फ़ौज को परेट करने और तीसरे रिसाले को कोर्ट मार्शल की तजवीज़ सुनने के लिये आज्ञा हुई। निदान, तमाम फ़ौज परेट पर इकट्ठी हुई, और परेट करने के बाद नियमानुसार अपनी-अपनी छावनी में चले गए। लगभग ६ बजे के कर्नल रेली साहब वापस आए, ताकि अपनी रेजिमेंट और दो तोपें नदी के पुल पर ले जायँ, और तीसरे रिसाले के विद्रोहियों को पुल पार करने से रोकें। निदान, गोरों की तमाम रेजिमेंट फ़ौरन् हुक्म पाते ही बाहर आई, और १० मिनट में तैयार होकर प्रसन्नता-पूर्वक चल दी। जब मैं परेट पर पहुँचा, तो कर्नल साहब ने मुझे हुक्म दिया कि अपनी नवीं व पहली कंपनी को लेकर और तोपख़ाने में जाकर इन दोनो तोपों के साथ रहो, जो रवाना होनेवाली हैं। चूँकि कप्तान डी० टेस्टर साहब का बँगला रास्ते में था, इसलिये मैं इनके पास गया, और इनसे तोपों की रवानगी की बाबत पूछा। साहब ने कहा, अभी तैयार होती हैं, तुम सदर बाज़ार में इनकी प्रतीक्षा करो। दोनो तोपें वहीं पहुँचेंगी। मैं इनके हुक्म के अनुसार सदर बाज़ार में ठहर गया। मुझे वहाँ पहुँचे ½ घंटा बीत गया, किंतु तोपों का कोई

पता न था। विवश होकर मैंने लेफ़्टिनेंट वाईमार्ट साहब से कहा कि तुम जाकर पूछो कि तोपों के आने में क्यों इतनी देर हुई है। और, मैं अपनी कंपनी लेकर शहर की ओर जाता हूँ, जिससे समय नष्ट न हो। लेफ़्टिनेंट वाईमार्ट जब पहुँचे, तोपें बाहर आ रही थीं। और, मेरे पास उस वक़्त पहुँचीं, जब मैं आधे से ज्यादा रास्ता ख़तम कर चुका था। जब मैं गारद से १०० गज़ के क़रीब पहुँचा, तो कप्तान वेल मैन नं० ७४ रेजिमेंट के मेरे पास आए, और कहा कि जल्दी चलो, क्योंकि विद्रोही वहाँ पहुँच गए हैं। और, उन अभागों ने ७४ नं० की रेजिमेंट के तमाम अफ़सरों को मार डाला था। यह सुनकर मैंने आज्ञा दी कि दोनो तोपे और सब बंदूकें भर ली जायँ। इस बीच में मैंने देखा कि कर्नल साहब ज़ख़मी और चूर-चूर मेजर साहब की मदद से एक पालकी पर सवार चले आ रहे हैं। चूँकि मेरी दोनो कंपनियों ने बंदूकें भर ली थीं, इसलिये मैं इनको लेकर विद्रोहियों की तलाश में निकला, और गारद तक आया, पर उस समय वहाँ कोई विद्रोही न था। और, न ५४ नं० रेजिमेंट की आठवीं कंपनी का कोई सिपाही वहाँ मौजूद था। यह हाल देखकर मैंने दोनो तोपें शहर के दरवाज़े पर लगा दीं, और इधर-उधर पहरे लगा दिए। इस जगह मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि कप्तान विलसन साहब ने मुझसे कहा था कि जो गारद पहरे में था, जिसमें ५० सिपाही ३८ नं० की रेजिमेंट के थे। ६ गज़ के फ़ासले पर

खड़े कर्नल रेली साहब के ज़ख़मी होने का तमाशा देखते रहे, और किसी ने मदद न की। यद्यपि कप्तान विल्सन ने बहुत कुछ कहा-सुना, किंतु टस-से-मस तक न हुए। स्वयं कर्नल रेली का बयान है कि मुझे स्वयं मेरी ही रेजिमेंट के सिपाहियों ने संगीनों से घायल किया है। डॉ० स्टुअर्ट साहब का कथन है कि मैंने उक्त साहब को विद्रोही सवारों के हाथ ख़ुशामद से चूमते देखा था। इस पर भी इन दग़ाबाज़ों ने विद्रोहियों को न रोका, और अफ़सरों को क़त्ल होने से ज़रा भी नहीं बचाया।

निदान, जब कोई विद्रोही दृष्टि न पड़ा, तो हमने अफ़सरों की लाशों को ढूँढ़ना शुरू किया। उन्हें इधर-उधर, मैदानों में और गिरजाघर तथा आस-पास के मकानों के निकट पड़ा पाया। सब लाशों को गारद के मकान के सहन में इकट्ठा किया। जिन अफ़सरों की लाशें ढूँढ़ने से मिल गईं, उनके नाम ये हैं—

कप्तान स्मिथ, कप्तान रोज़, लेफ़्टिनेंट एडवर्ड, वायर फ़ील्ड, डॉ० वोजंग, लेफ़्टिनेंट बटलर। इनके सिवा लेफ़्टिनेंट स्वोर्न इनसाइन इंजुलो साहब भाग गए थे। पीछे हमारे पास सही-सलामत आ गए। इनमें से लेफ़्टिनेंट बटलर के सिर पर एक सख़्त ज़ख़म लगा था, जो उनके बयान के अनुसार शहरवालों के द्वारा लगा था। अब शहरवालों ने गिरजाघर और अँगरेज़ों की कोठियों को ख़ूब लूटना शुरू किया। मेमें बड़ी

कठिनाई से गारद तक पहुँचीं, परंतु इन सब घटनाओं के होने पर भी शहर में इस वक़्त सब तरफ़ अमन-अमान था। इसके बाद मेगज़ीन की तरफ़ से तोपों के चलने की आवाज़ सुनाई दी। मैं यह कहना भूल गया कि दोपहर के बाद ७४ नं० की रेजिमेंट मेजर एबट साहब की अधीनता में आ चुकी थी। इसके एक घंटे बाद मेगज़ीन के उड़ने की आवाज़ आई। परंतु हम यह न जान सके कि मेगज़ीन किसने उड़ाया, और क्योंकर उड़ा। थोड़ी देर बाद लेफ़्टिनेंट ड्यूली साहब ने, जो मेगज़ीन से भागकर हमारे पास आए थे, कहा कि मैंने और सार्जंटों ने यथासंभव बचाया। सब तरह लाचार होकर उड़ा दिया था। क्योंकि शाह देहली के भेजे जंगी ज़ीने आ चुके थे, और विद्रोही भीतर पहुँच गए थे, तथा ख़लासी आदि भी विद्रोहियों से मिल गए थे। विवश हो हमने उसे उड़ा दिया। हम नहीं जानते कि इसमें कितने आदमी मरे। किंतु मैं किसी तरह बचकर भाग निकला। उक्त साहब के चेहरे से भी प्रकट होता था कि यदि ईश्वर की कृपा न होती, तो इनका बचना संभव न था, क्योंकि बारूद के आघात से तमाम चेहरा काला हो गया था।

उस रोज़ दिन-भर ब्रगेडियर साहब का कोई हुक्म हमारे पास न आया। यद्यपि हमने कई बार उनके पास आदमी भेजे कि वह कोई आज्ञा हमें दें, किंतु एक बार भी उक्त साहब और ब्रगेडियर मेजर इधर देखने तक न आए कि क्या हो रहा है। यद्यपि उनका यहाँ आना बहुत जरूरी था। उन्होंने दो तोपें

हमारी सहायता के लिये अवश्य भेज दी थीं, किंतु फिर उन्हें वापस मँगा लिया। ३८ नं० के डॉ० वो साहब को तोपखाने के एक सिपाही ने घायल कर डाला। इनके चेहरे पर गंभीर घाव थे। डॉक्टर महोदय गारद में इलाज के वास्ते आए थे, और जब वापस जा रहे थे, रास्ते में इन्हें घायल कर दिया गया।

शाम को ५ बजे के लगभग एक हुक्म इस आशय का आया कि एक रेजिमेंट ७४ नं० की, जो मेजर एबट साहब की कमान में थी, पहाड़ी पर—जहाँ ३८ नं० की रेजिमेंट पहले से तैयार खड़ी है—फ़ौरन् आ जाय। सिपाही तैयार होकर कूच की प्रतीक्षा में खड़े थे कि हठात् ३८ नं० की रेजिमेंट के कुछ विद्रोही सिपाहियों ने अफ़सरों पर, जो वहाँ उपस्थित थे, गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। मैं दैवयोग से कश्मीरी दरवाज़े के निकट था। मैंने देखा, एक अफ़सर घायल होकर गिरा। इतने में मेरी रेजिमेंट के एक सिपाही ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर मुझे द्वार के बाहर ढकेल दिया और कहा, यदि क्षण-भर भी ठहरे, तो इसी प्रकार मारे जाओगे। ज्यों ही मैं बाहर आया कि ७४ नं० की रेजिमेंट का एक सिपाही मेरे साथ हो गया। हमने सिपाही को साथ लेकर, रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते से पहाड़ी के बुर्ज की राह ली। वहाँ पहुँचकर ब्रगेडियर और दूसरे अँगरेज़ों से सब घटनाएँ कही गईं। यहाँ छावनी में बहुत-सी अँगरेज़-स्त्रियाँ और कतिपय पदाधिकारी एकत्रित

थे। यह हाल सुनकर साहब भागने का विचार करने लगे। उस समय आदमियों की भीड़-भाड़, गाड़ी, बग्घी और पालकी-गाड़ियों की अधिकता तथा लोगों की घबराहट देखने योग्य थी। ये सब सवारियाँ कर्नाल की ओर चलीं। किंतु जब उस स्थान पर पहुँचीं, जहाँ से एक मार्ग मेरठ की ओर जाता था, तो कुछ सवारियाँ मेरठ की तरफ़ चली गईं। मुझे इससे पहले यह कह देना आवश्यक है कि लगभग ११ बजे ५४ नं० रेजिमेंट की लाइट कंपनी का एक सिपाही मेरे पास आया, और उसने कहा कि मुझे रेजिमेंटवालों ने इस वास्ते आपके पास भेजा है कि आप उनको जहाँ जाने का हुक्म दें, वे वहाँ जायँ। मैं यह सुनकर आश्चर्य में पड़ा, और मैंने पूछा कि रेजिमेंट कहाँ है ? उसने कहा, सब्ज़ी-मंडी में है। मैंने उससे पूछा, रेजिमेंट वहाँ किसलिये और क्योंकर गई ? उसने जवाब दिया, जिस समय विद्रोहियों ने अफ़सरों पर आक्रमण किया था, तो तमाम सिपाही तितर-बितर होकर भाग गए, और अब तमाम शहर में फिर-फिराकर सब्ज़ीमंडी में एकत्रित हुए हैं। यह सुनकर मैंने आज्ञा दी कि सब मेरे पास चले आवें। निदान, वह गया, और सब सिपाही आज्ञानुसार मय निशान-झंडे के उपस्थित हो गए।

इसके बाद हवलदार मेजर ने आकर कहा कि तुम लोग तीसरे रिसाले के सवारों के साथ थे, और उन लोगों को सम्मिलित होने को उत्तेजित करते थे, परंतु सिपाहियों ने इसे स्वीकार

न किया। यहाँ तक तो आँखों देखी घटनाएँ मैंने कहीं। किंतु जब मैं गारद से चला आया, तो उसके बाद कुछ घटनाएँ प्रकट हुईं। वे एक साहब की चिट्ठी से उद्धृत की जाती हैं, जो वहाँ उपस्थित थे, और दूसरे अँगरेज़ों के साथ भागे थे।

३८ रेजिमेंट के सिपाहियों ने जब अपने ही अफ़सरों पर गोलियाँ बरसानी शुरू कीं, तो तमाम अफ़सर एक मोरी के रास्ते, जो गारद के कमरे के अंदर थी, भागकर शरणापन्न हुए। किंतु जब तक भागें, तीन अफ़सर—कप्तान गार्डन, लेफ्टिनेंट स्मिथ और लेफ्टिनेंट रेलुवली—मारे गए। और, लेफ्टिनेंट स्वोर्न साहब के एक गोली टाँग में आकर लगी। किंतु यह सबके साथ ठिकाने पर पहुँच गए, और ज़ख्म को बाँध-बूँधकर खंदक में कूद पड़े, और उसकी तह तक पहुँच गए। और भी अँगरेज़ कूदने को तैयार थे कि स्त्री और बच्चों की चीत्कार-ध्वनि आई। ये सब स्त्रियाँ गारद के कमरे में उपस्थित थीं। यह सुनकर सब अँगरेज़ कमरे में वापस गए। यद्यपि गोलियाँ बरस रही थीं, परंतु इन्होंने इसकी कुछ परवा न की, और सब स्त्रियों को एक-एक करके रूमालों को बाँधकर खंदक में उतार दिया, और ख़ुद भी उतर गए। इसकी दूसरी तरफ़ की दीवार पर चढ़कर इन्हीं रूमालों के ज़रिए फिर सब स्त्रियों को खींच लिया। वहाँ से सब-के-सब यमुना की ओर चले, किंतु प्रत्येक क़दम पर भय लगा हुआ था कि कहीं विद्रोही न आ जायँ, और हमें मार न डालें। किंतु ईश्वर का धन्यवाद है कि विद्रोहियों ने इनका पीछा नहीं

किया। परंतु आश्चर्य तो यह है कि उस समय भी गोलियाँ नहीं चलाईं, जब सब स्त्री-पुरुष खंदक में उतर रहे थे। यद्यपि इस उतरने-चढ़ने में आध घंटा लग गया होगा। निदान, यह सब अँगरेज़ और इनकी स्त्रियाँ नदी के पार पहुँचीं, और वहाँ से भूखी-प्यासी और थकी हुई एक गाँव में पहुँचीं, जो देहली से १२ मील पर है। यहाँ के नंबरदार ने इन लोगों से प्रतिज्ञा की थी कि वह एक चिट्ठी मेरठ भेज देगा। निदान, मेरठ से तीसरे दिन कुछ फ़ौज आई, और इस दल को मेरठ ले गई। लेफ्टिनेंट टेलर साहब और इंसाइन इञ्जुलो भी भागे थे, किंतु वे किसी गाँव में मारे गए।

अँगरेज़ों के क़त्ल व नाश के बाद विद्रोहियों ने एक शाहज़ादे को तख़्त पर बिठाया, और अपना चौकी-पहरा सब दरवाज़ों पर बिठा दिया। क़िले के चारों तरफ़ तोपें चढ़ा दी गईं। ख़ज़ाना भी क़िले में ही रक्खा गया। क्योंकि विद्रोहियों का विचार था कि पहले अँगरेज़ हम पर आक्रमण करेंगे, तो इस स्थान को वे अंत तक न छोड़ेंगे।

विद्रोहियों ने केवल अँगरेज़ों के ही साथ अत्याचार नहीं किया, किंतु शहरवालों के साथ भी वे अत्याचार किए कि ईश्वर ही रक्षा करे। देहली शहर सदैव से धनवान् प्रसिद्ध है। विद्रोही अच्छी तरह यह बात जानते थे, इसलिये उन्होंने इसे ख़ूब लूटा। एक हिंदोस्तानी, जो इस बीच (३१ मई से २३ जून तक) दिल्ली में था, नगर का हाल इस प्रकार लिखता है—

विद्रोहियों ने नगरवालों का एक घोड़ा भी नहीं छोड़ा, सब छीन ले गए। बहुधा दूकानदारों को केवल इस अपराध पर मार डाला कि वे ठीक दाम माँगते थे। बड़े-बूढ़ों से बदज़बानी की, यमुना के पुल पर जो गारद था, उसने हरएक मुसाफ़िर लूट लिया। जिस रोज़ से नगर में मैं आया और जब तक रहा, मैंने कभी पूरा बाज़ार खुला नहीं देखा। केवल दो-चार बनिए बक्क़ालों की दूकानें, मामूली सामान की, खुला करती थीं। नगरवासी और दूकानदार सभी शोक कर रहे थे। पेशावरों की दशा फ़ाक़े करने तक पहुँच गई थी। विधवाएँ मकानों में बैठी रोया करती थीं। प्रातःकाल से संध्या तक विद्रोहियों को गालियाँ दिया करती थीं। अँगरेज़ों के नामी और प्रसिद्ध कर्मचारी घर से नहीं निकलते थे।

प्रतिदिन एक नया कोतवाल नियत होता था। विद्रोहियों को जहाँ नक़द रुपया दिखाई पड़ता, तत्काल लूट लेते थे। यह सब रुपया अभी तक सिपाहियों के अधिकार में था। और खज़ाने शाही में एक पैसा भी दाखिल नहीं किया गया था। किसी-किसी रेजिमेंट के पास इतना रुपया जमा हो गया था कि वह बड़ी कठिनाई से चल सकते थे। इसलिये बोझ के कारण उन्होंने रुपयों की मुहरें बदलवा लीं। महाजनों ने मुहर का भाव इतना बढ़ा दिया था कि जो मुहर १६) के दर की थी, उसके २४)-२५) कर दिए। जिस तरह पहले सिपाहियों ने महाजनों को लूटा था, उसी तरह अब

महाजन सिपाहियों को लूटने लगे। यहाँ तक लूटा कि सोने की अशर्फ़ियों की जगह पीतल की अशर्फ़ियाँ बेचीं।

जिस रेजिमेंट के हाथ कुछ लूट नहीं लगी, वह रुपएवाले सिपाहियों पर ईर्षा करते थे, और चूँकि मालदार सिपाही लड़ने के स्थानों में न जाते थे, इस बहाने से ग़रीब सिपाही इन्हें बहुत सख्त बातें कहते थे, बल्कि मैंने सुना कि धनवान् और ग़रीब सिपाहियों में लड़ाई होनेवाली है।

एक रेजिमेंट अलीगढ़ से, १५० सवार मैनपुरी से, थोड़े-से निरस्त्र सिपाही आगरे से, एक रेजिमेंट और दो सवार हाँसी हिसार से, थोड़े-से निरस्त्र सिपाही अंबाला से, २०० सवार और दो कंपनी मथुरा से, छठा लाइट रिसाला तथा दो रेजि-मेंट जालंधर से, दो रेजिमेंट और तोपख़ाना नसीराबाद से मेरे सामने देहली में आए, और विद्रोहियों के साथ मिल गए।

मुरादनगर, रोहतक, अलीगढ़, हाँसी, मथुरा, गढ़ी, हरसरू, तरसीली, इन स्थानों के सरकारी ख़ज़ानों को विद्रोहियों ने लूट लिया, और शाही ख़ज़ाने में दाख़िल कर दिया। बादशाह की तरफ़ से प्रत्येक पैदल को चार आना और प्रत्येक सवार को १) प्रतिदिन मिलता था। मुझे यह मालूम नहीं कि सरकारी ख़ज़ानों से कितना रुपया आया, किंतु १७ जून को शाही ख़ज़ाने में १ लाख १६ हज़ार रुपया था।

शाहज़ादे शाही फ़ौज के अफ़सर बनाए गए थे। मुझे इन ऐश के पुतलों पर दया आती थी। जब कभी इन बेचारों को

ठीक दोपहर में नगर से बाहर जाना पड़ता था, तो विपत्ति आ जाती थी। तोप व बंदूक़ की आवाज़ से दिल धड़क उठता था। उस पर मज़ा यह कि शासन और सेना-संचालन करना बिलकुल नहीं जानते थे। सिपाही इनकी मूर्खता पर हँसते थे। कभी-कभी तो इनके कुप्रबंधों के कारण बदज़बानी भी कर बैठते थे। फ़ौज के लिये बादशाह मिठाई वग़ैरह लड़ाई के स्थलों में भेजते थे, तो यार लोग रास्ते में ही लूट का माल समझकर उड़ा लेते थे। शाही फ़ौज की वीरता और भी प्रशंसनीय थी। वास्तव में वे बड़े वीर थे। जब इनका जी चाहता कि युद्ध-स्थल से लौट आवें, तो पैरों पर ज़ख़्म के बहाने फटे-पुराने कपड़े बाँधकर लँगड़ाते और हाय-तोबा करते हुए वापस चले आते थे।

३० जून को रात के समय हिंडन के पुल पर विद्रोही बिलकुल घबरा गए थे। बहुतेरे सिपाहियों ने अपनी तलवारें और बंदूक़ें कुओं में डाल दी थीं, और तितर-बितर होकर जंगलों और देहातों की तरफ़ भाग गए थे। क्योंकि इनको विश्वास था कि अँगरेज़ी फ़ौज इनका पीछा करती चली आ रही है। यदि उस दिन अँगरेज़ी फ़ौज आ जाती, तो दिल्ली पर उसी दिन अधिकार हो जाता, इसलिये कि ये बिखरे हुए सिपाही दूसरे दिन नगर में आए। बहुत-से इनमें से लापता हो गए। रास्ते में गूजरों ने इन्हें ख़ूब लूटा। निदान, जब वे नगर में घुसे, तब इनके पास एक पैसा भी न था।

बादशाह की आज्ञा शायद ही मानी जाती थी, और शाहज़ादों को तो कोई पूछता तक न था कि तुम किस मर्ज़ की दवा हो ! सिपाही बिलकुल उच्छृंखल हो गए थे। न बिगुल को मानते थे, न अफ़सरों की सुनते थे, और न अपना कर्तव्य ही पालन करते थे। फ़ौज की गिनती तो एक तरफ़ रही, कभी वर्दी भी नहीं पहनी।

रईस शाहज़ादे और बेगमें अपने पुराने मज़ों को याद कर-करके पछताया करते थे। शाहज़ादे फ़ौज की भाषा न समझते थे, और बिना दुभाषिए की सहायता के बात ही नहीं कर सकते थे।

शिल* के गोलों से शहर के मकानात बहुधा विध्वंस हो गए थे। क़िले के दीवान खास में जो संगमर्मर का तख्त बिछा था, चूर-चूर हो गया।

देहली का अँगरेज़ी स्कूल पहले ही दिन लूट लिया गया था, और अँगरेज़ी किताबें गली-कूचों में पड़ी हुई थीं। जो अँगरेज़ी बोलता था, सिपाही उसकी ख़ूब मरम्मत करते और क़ैद कर लिया करते थे।

मेगज़ीन ११ मई को फटा था। इसके कारण आस-पास के बहुत-से मकानों को हानि पहुँची थी। लगभग ५०० आदमी उसमें मर गए थे। लोगों के मकानों में इतनी गोलियाँ

---

* वे गोले, जिनमें छोटी-छोटी बर्छियाँ लगी रहती हैं।

गिरी थीं कि लड़कों ने आध-आध सेर और बाज़ों ने सेर-सेर-भर चुन लीं।

इसके बाद विद्रोही और नगर-वासियों ने मेगज़ीन को ख़ूब लूटा। जितना सामान—टोपी, बंदूक़, तलवार और संगीनें—ले सके, उठाकर ले गए। खलासियों ने अपने घरों को उम्दा-उम्दा हथियारों से भर लिया। और, रुपए के तीन सेर के हिसाब से तोल-तोलकर बेच डाला। ताँबे की चादरें रुपए की तीन सेर बिकती थीं। बंदूक़ों की क़ीमत अधिक-से-अधिक आठ आना थी, परंतु भय से कोई नहीं लेता था। अच्छी-से-अच्छी अँगरेज़ी किर्च चार आने को भी महँगी थी, और संगीन तो एक आने में भी महँगी थी। तोसदान और परतले इतने अधिक थे कि इनके लूटनेवालों को बेचते समय एक पैसा भी नहीं मिला, अर्थात् किसी ने ख़रीदा ही नहीं। मजनू के टीले में जितनी बारूद थी, उसमें से आधी तो गूजरों आदि ने [illegible]ट ली और आधी नगर में आ गई।

तीसरी कथा

मेगज़ीन की रक्षा के विषय में कंडेक्टर युगली और दूसरे अँगरेज़ों का ऊपर उल्लेख आ चुका है। नीचे की चिट्ठी से मालूम होगा कि युगली साहब पर मेगज़ीन के उड़ने और भागने के बाद क्या गुज़री।

साहब ने मेगज़ीन से निकलते ही यह किया कि राबर्ट साहब की मेम को चार वर्ष के लड़के-सहित यमुना पार कराया। इसमें यह कठिनाई थी कि उक्त साहब के हाथ पर मेगज़ीन की लड़ाई में ऐसा घाव आया था कि वह हाथ बिलकुल बेकार हो गया था। नदी पार करने पर ५-६ घाव और भी लगे थे, क्योंकि यमुना-पार विद्रोहियों ने इन्हें घेर लिया, और तमाम शरीर के कपड़े सिवा कमीज़ के सब छीन लिए।

वह १२ दिन भटकने के बाद लेफ़्टिनेंट रेज़ साहब के साथ मय बाल-बच्चों के मेरठ पहुँचे। वह रेज़ साहब से एक दिन बाद गए थे। युगली साहब की मुलाक़ात रेज़ साहब से ऐसी ही हालत में हुई कि विद्रोहियों ने इनसे सब कुछ छीन लिया और इनको घेर रक्खा था। रेज़ और उनकी स्त्री मुझसे कहती थी कि यदि इस आदमी का—अर्थात् ख़बर देनेवाले का—वीरता-

पूर्ण ढंग का संबंध बीच में न होता, तो हमारी जान बचनी संभव न थी; क्योंकि उसने कई बार अपना सिर ज़मीन पर रख दिया। और, एक बार विद्रोहियों ने इसके सिर पर पैर रखकर सिर काटना चाहा, मगर इसने कहा, मैं सिर कटाना इस नियत से स्वीकार करता हूँ, यदि तुम प्रतिज्ञा करो कि औरतों की बेपर्दगी और अपमान न करोगे। इस बात से विद्रोहियों को दया आ गई और उन्होंने छोड़ दिया।

इससे अधिक वीरता का काम यह किया कि केवल छ दिन अस्पताल में रहे थे कि ब्रगेडियर विलसन साहब दिल्ली जाने लगे। इनको पता लगा, तो यह भी उनके पास पहुँचे, और साथ चलना चाहा। पर ज़ख्म अब तक हरे थे, इसलिये उन्होंने स्वीकार न किया। फिर भी, हमने सुना है, वह केवल नौ दिन अस्पताल में रहे, और दसवें दिन तोपखाना और लड़ाई का सामान, जो मेरठ की फ़ौज के लिये जा रहा था, साथ हो गए। और, हिंडन के पुल पर पहुँचकर फ़ौज के साथ दिल्ली की छावनी में पहुँच गए। १७ जून तक फ़ौज के साथ रहे। इस बीच में ३ बार इन्हें सरसाम हुआ—दो बार रास्ते में और एक बार मोरचाल छावनी में, जहाँ वह ज़रूरी कामों में संलग्न थे। तीसरी बार सरसाम होने का कारण यह हुआ कि प्रथम तो शरीर कम-ज़ोर, फिर दिन-भर सूरज की तेज़ी में काम में लगे रहना। अंततः १७ जून को मेरठ वापस किए गए, मगर यह वापसी

इनकी इच्छा के विरुद्ध थी। इन्होंने २६ वर्ष तक सरकार की सेवा की। इस बीच में १७ साल तक केवल मेगज़ीन का काम किया। जो कुछ माल-असबाब था, सब बर्बाद कर दिया। अधिक शोक यह कि इनकी स्त्री और तीन बच्चे भी इसी हुल्लड़ में नष्ट हुए।

चौथी कथा

डॉ॰ एस्॰ एच्॰ हिविटसन साहब बीस-पचीस दिन तक हिंदोस्तानियों में हैरान व परेशान फिरते रहे, और हर प्रकार के कष्ट तथा अपमान इस बीच में उन्होंने उठाए। तीन-चार बार तो ऐसा हुआ कि वह अपने को मृतप्राय समझने लगे। भागने और यात्रा के समय जो-जो कष्ट और विपत्तियाँ इन पर पड़ीं, उनके संबंध में स्वयं इनका बयान नीचे लिखा जाता है। आशा है, ध्यान-पूर्वक पढ़ा जायगा—

देहली की पहाड़ी पर जो बुर्ज है, उसमें तमाम मेमें इकट्ठी हो गई थीं। जब भय प्रकट हुआ, तो मैं ब्रगेडियर ग्रीबसन के पास गया, और अर्ज़ की कि आप गोरी पल्टन की कुमक और मदद के लिये चिट्ठी लिखें, तो मैं उसे लेकर मेरठ जाऊँगा। तब साहब ने फ़ौरन् चिट्ठी लिखकर मुझे दी। मैं अपने स्त्री-बच्चों तथा अन्य मेमों से मिल-मिलाकर अपने बँगले पर आया, और साधु का भेष बनाकर तथा हाथ-पाँव रँगकर नगर में होता हुआ नदी के पुल तक पहुँचा। परंतु भाग्य देखिए कि पुल टूटा हुआ था। विवश हो छावनी वापस आया कि मेगज़ीन के निकट से जो रास्ता है, उधर से यमुना पार करना चाहिए। किंतु इस बीच में तीसरे रिसाले के सवार छावनी में पहुँच

गए थे, और झुंड-के-झुंड जाट व गूजर छावनी के आस-पास के गाँवों को लूट-पाट करने चले आ रहे थे।

अँगरेज़ों के बँगलों में आग लग चुकी थी। मैं यह हाल देखकर मेरठ पहुँचने से हताश हो गया, और परेट के मैदान से आगे बढ़ा। इस बीच में दो सिपाहियों ने मुझ पर गोली चलाई, पर मैं बच गया। मैं अभी उस बाग़ तक पहुँचा था, जो नगूर से मिला हुआ है। गाँववालों ने मुझे पकड़ लिया, और मेरे सब कपड़े छीन लिए। मैं वहाँ से बिल्कुल नंगा इस विचार से कर्नाल की ओर चला कि शायद उन लोगों में से, जो कर्नाल जा रहे हैं, कोई मिल जाय। पर मैं अभी एक ही मील गया हूँगा कि दो सिपाही आए, जो अन्य अँगरेज़ों का पीछा कर रहे थे, पर कोई इनके हाथ न लगा था। वे मेरे पास आए, और नंगी तलवारें लेकर कहने लगे, तू फ़िरंगी है, किंतु मैं अत्यंत दीन होकर इनके सामने गिर पड़ा। चूँकि मैं हिंदी-भाषा और मुसलमानी धर्म जानता था, इसलिये मैंने पैग़ंबर मुहम्मद की प्रशंसा शुरू कर दी, और कहा कि यदि तुम विश्वास रखते हो कि इमाम मेंहदी इंसाफ़ के लिये आएँगे, तो मुझ बेगुनाह को न मारो। साथ ही और भी धर्म की बातें कहीं। फिर भी एक ने तलवार का वार मुझ पर किया, पर मैं इनके सामने ज़मीन पर गिरने से वार बचा गया। और, चूँकि वे सवार थे, उनकी तलवारें मुझ तक न पहुँच सकीं। और, मेरी विनम्र बातों ने भी कुछ असर

किया। और, यह कहकर मुझे छोड़ दिया कि यदि हज़रत मुहम्मद साहब के नाम पर तू पनाह न माँगता, तो तू भी और काफ़िरों की तरह न बचता। अब मैं बहुत घबरा रहा था, और मुझमें खड़े रहने की भी ताक़त न थी। परंतु चूँकि चलना आवश्यक था, इसलिये विवश हो मैं आगे बढ़ा। लगभग एक मील और चला हूँगा कि बहुत-से मुसलमान नज़र आए, और मुझे देखकर कहने लगे कि यह फ़िरंगी है, क़ाफ़िर को मार डालो। और मेरी तरफ़ देखकर कहने लगे। तुम फ़िरंगियों ने यह चाहा था कि हम सबको बेदीन कर दें, यह कहकर मुझे खींचकर एक गाँव में ले गए, जो एक मील से कुछ ज्यादा अंतर पर था, और मेरे हाथ पीठ से बाँध दिए। इसके बाद उनमें से एक आदमी ने कहा कि करीमबख़्श, जाओ, अपनी तलवार ले आओ। हम इस काफ़िर का सिर काटेंगे। करीमबख़्श गया, और जब तक तलवार लावे, गाँव से एक आवाज़ आई कि गड़बड़ है गड़बड़। यह सुनकर जितने मुसलमान मेरे पास थे, सब अपनी-अपनी फ़िक्र में लगे। अवसर देखकर मैं खसका और अंधाधुंध भागा। इस तरह इन आततायियों से प्राण बचे। सड़क पर आकर मैं कर्नाल की ओर भागा, पर रास्ते में फिर मुझे कुछ लुहार, जो देहली के मेगज़ीन में नौकर थे, मिल गए, और मुझे घेर लिया। इनमें से एक ने मुझे पहचान लिया, और कहा, साहब, डरो मत, मेरे साथ गाँव में चलो, वहाँ मैं आपके खाने-पीने की फ़िक्र

करूँगा। अगर आगे जाओगे, तो उन मुसलमानों के हाथ से, जो लूटने और फ़िरंगियों के मारने के लिये फिर रहे हैं, अवश्य मार डाले जाओगे। निदान, इन लुहारों के साथ मैं इनके गाँव गया। वास्तव में इन्होंने मेरी बड़ी ख़ातिर की। किसी ने पहनने को धोती दी, किसी ने टोपी दी, किसी ने दूध पिलाया, किसी ने रोटी दी। अभिप्राय यह कि मुझे जीने की आशा बँधी। पर मैं इतना घबराया हुआ था कि मुझसे अच्छी तरह बोला भी नहीं जाता था। उन्होंने मुझे चारपाई दी। मैं उस पर लेट गया, पर मुझे नींद न आई। मैंने उन आदमियों से कहा, मैं डॉक्टर हूँ। यह सुनकर उन्होंने और भी ख़ातिर की। दूसरी सुबह को गाँव के चौधरी ने मुझे बुलवाया। तमाम गाँव फ़िरंगी डॉक्टर को देखने को इकट्ठा हो गया। मैं बिल्कुल थका-माँदा था, पर गाँववाले जो कुछ पूछते थे, उसका मैं साफ़-साफ़ जवाब देता था। विशेषकर जब उन्होंने देखा कि मैं उनके मज़हब और रस्मों को पूरे तौर पर जानता हूँ, तो मुझे ज़िंदा रखने के लिये वे मेरा बहुत ख़याल रखने लगे। वे यह कहते थे कि हम शक्ति-भर तुम्हें बचावेंगे। मैं इस गाँव में रहता था। उस समय मैंने सुना, निकट के किसी गाँव में वुड साहब रहते हैं। इस गाँव का नाम समीअपुर है। इस गाँव के एक आदमी ने मुझसे आकर कहा कि मेरे गाँव में डॉ० वुड साहब नामी हैं। उनको कुछ दवाएँ चाहिए। तुम सब हिंदोस्तानी दवाएँ जानते हो, कृपा कर

बताओ, उनको क्या दिया जाय ? मैंने एक नुस्ख़ा लिख दिया, पर मुझे यह मालूम नहीं कि दवा उनके पास पहुँची या नहीं। मैं इस गाँव में रह रहा था कि कर्नल रेलो साहब की ख़बर मेरे पास पहुँची कि वह बर्फ़ख़ाने के निकट, जो परेट के मैदान के निकट है, घायल पड़े हुए हैं। यह सुनकर मैंने गाँववालों से कहा कि साहब बहुत बड़े नामी आदमी हैं। अगर तुम उनके वास्ते खाना-पानी ले जाओगे, तो सरकार इस सेवा के बदले तुम्हें बहुत इनाम देगी। गाँववाले सात दिन तक बराबर खाना ले गए। पर मैं जब इस गाँव से चला, तो कोई दस दिन के पीछे मैंने सुना कि उक्त कर्नल साहब को किसी सिपाही ने क़त्ल कर डाला।

मुझे इस बावरी—गाँव—में रहते कुछ दिन हुए थे कि इतने ही में यह बात प्रसिद्ध हो गई कि जितने अँगरेज़ मेरट, अंबाला और कलकत्ते में थे, सब क़त्ल हो गए, और दिल्ली के बादशाह की हुकूमत स्थापित हो गई। अगर कोई आदमी किसी फ़िरंगी को अपने घर या गाँव में ठहरावेगा या छिपावेगा, तो वह क़त्ल कर दिया जायगा, और गाँव जला दिया जायगा। यह सुनकर गाँववाले घबराए। और, मुझे रात के समय निकालकर एक आमों के बाग़ में छोड़ आए। वहाँ मैं रात-दिन रहता था। रात को कोई-न-कोई गाँववाला मुझे खाना-पानी दे जाता था। ऐसे कठिन समय में मुझ पर जो कुछ बीतता था, कहने योग्य नहीं। दिन-भर धूप की तेज़ी में जलता था, और

रात अकेले बीतती थी। बहुधा आस-पास गीदड़ आदि चिल्लाया करते थे। जो-जो विपत्तियाँ मैंने झेली हैं, मैं ही जानता हूँ, या परमेश्वर जानता है। पाँच दिन बाद इस बाग़ से फिर मुझे गाँव में ले गए, और वहाँ भूसे की कोठरी में छिपा दिया। मैं इस तंग और अँधेरी कोठरी में २४ घंटे रहा। इसमें जितनी गर्मी थी, और जितना दिल घबराता था, उसका हाल कहना संभव नहीं। मैं नहीं कह सकता, कौन-सी विपत्ति कठिन थी—बाग़ की या इस भूसे की कोठरी की।

इसके बाद एक और समाचार फैला कि फ़िरंगियों की तलाश के लिये सवार नियत हुए हैं, जो गाँव-गाँव जाकर तलाश करेंगे। अब यह निश्चय किया गया कि मैं एक जोगी-फ़क़ीर के साथ इस गाँव से कहीं अन्यत्र चला जाऊँ। वह फ़क़ीर मेरे पास आया, और बोला—तुम जहाँ कहोगे, वहीं पहुँचा दूँगा, किंतु अब तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं। मैं इस समय जोगी के साथ चलकर बरसोहा जा पहुँचा। रात-भर वहाँ ठहरा। इस फ़क़ीर ने मेरे तमाम कपड़े वहाँ अपने एक दोस्त के घर जाकर रँगे, और मुझे माला और रुद्राक्ष पहनने को दिया, जिससे जोगी-फ़क़ीर और मेरी सूरत में कुछ अंतर न रहे। जब सब भेष ठीक हो गया, तब इस जोगी के साथ मैंने फेरी शुरू की। वह मुझे कई गाँवों में ले गया। कहीं मुझे कश्मीरी, कहीं दादूपंथी और कहीं जोगी-फ़क़ीर बताता रहा। जिस गाँव से मैं निकला, वहाँ के लोगों ने

मुझसे कुछ-न-कुछ पूछा। चूँकि मैं ज्योतिष आदि भी कुछ-कुछ जानता था, इसलिये जो जिसने पूछा, मैंने साफ़-साफ़ जवाब दिया। इस कारण मेरी ख़ूब ख़ातिर होती रही। कोई पैसा देता था, कोई खाना लाता था।

इस गाँव से रवाना होकर एक और गाँव में पहुँचे। वहाँ सेवकदास महंत कबीरपंथी साधु रहता था, उसके पास गए। मैं उसके धर्म को भी जानता था। कुछ किताबें जो मैंने पढ़ीं, तो वह बहुत कृपालु हो गया; और उसके पूछने पर मैंने अपने को कश्मीरी बताया। पर उसने कहा, कश्मीरियों की आँखें भूरी नहीं होतीं। तुम्हारी भाषा, भेष और रंग-ढंग सब ठीक है, पर तुम्हारी आँखें तुम्हें छिपने नहीं देतीं, तुम अवश्य अँगरेज़ हो। इस पर मैंने स्वीकार किया। पर चूँकि कबीर की बानी मैंने पढ़ी थी, इसलिये वह मुझसे बहुत दया से पेश आया। मैं यहीं था कि एक सिपाही आया, और कहने लगा कि मेरे पास अंबाले की फ़ौज के वास्ते, जो अभी मुक़ाम लानी में ठहरी है, कुछ चिट्ठियाँ हैं, मैं ये वहाँ ले जाऊँगा। उसने मुझे नहीं पहचाना कि यह भी फ़िरंगी है। पर मैंने उससे कहा कि मैं डॉक्टर हूँ, और चाहता हूँ कि मेरी चिट्ठी उस फ़ौज के कमान अफ़सर के पास पहुँचा दो। उसने स्वीकार किया, और मैंने चिट्ठी लिखकर दे दी। दिन-भर इसी चिट्ठी की प्रतीक्षा रही। पर जब न उसका जवाब आया, न मदद आई, तो मैंने यही ठीक समझा कि मेरठ चल

देना चाहिए। जिस जोगी के साथ मैं यहाँ तक आया था, उसने मेरठ चलने का वादा भी किया। इस गाँव के बहुत-से आदमी मेरे साथ हरचंदपुर तक गए। जहाँ एक ज़मींदार फ़्रांसिस कोहिन नामी रहते थे। यह पहले तहसीलदार थे। यह बुज़ुर्ग आदमी मेरे साथ अत्यंत कृपा से पेश आए, और मुझे वे चिट्ठियाँ दिखाईं, जो कर्नल न्यूट-कप्तान सालगेड साहब ने लिखकर दी थीं कि इन्होंने मुझे बहुत आराम पहुँचाया, और हमारी बड़ी ख़ातिर की, तथा सकुशल मेरठ तक पहुँचा दिया।

ये चिट्ठियाँ देखकर मैंने भी मेरठ जाने की इच्छा प्रकट की। इस बीच में एक चिट्ठी मेरे नाम 'केकड़ा गाँव' से इस आशय की आई कि राजा झींद के १०० सवार कप्तान मेक, इंदौर की अधीनता में मुक़ाम 'केकड़ा' में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं, और वह मुझे मुक़ाम राई पर, जहाँ पड़ाव है, पहुँचा देंगे। इस पर कोहिन साहब ने मुझे अपनी गाड़ी पर सवार कराकर केकड़ा रवाना कर दिया। यहाँ पहुँचकर कप्तान मेक, इंदौर और लेफ़्टिनेंट मेयो को देखकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुई, और जान में जान आई।

मैं २५ दिन तक देहातों, जंगलों और वीरानों में भटकता रहा। यदि मुझे हिंदोस्तानी भाषा न आती होती, तो मैं अवश्य ही क़त्ल कर दिया गया होता। मैं हिंदोस्तानी भाषा उतनी ही शुद्ध बोलता हूँ, जितनी अँगरेज़ी। मैं अपनी जीवन-रक्षा

को अपौरुषेय काम और ईश्वरीय अनुकंपा का फल समझता हूँ। किंतु जो कष्ट और कठिनाइयाँ मैंने सहन की हैं, उनका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता।

पाँचवीं कथा

एक दल, जिसमें बहुत-से अफ़सर और अँगरेज़-स्त्रियाँ थीं, देहली से भागने और मेरठ जाने का हाल इस तरह कहता है कि पहले यह इरादा था कि पहाड़ी पर जो बुर्ज है, उसमें क़िले बंद होकर विद्रोहियों का सामना किया जाय, किंतु यह बात व्यर्थ थी, इसलिये भागने का ही निश्चय किया गया। जब चलने लगे, तो ३८ और ७४ नं० रेजिमेंट के सिपाही भी चल दिए। थोड़े-से सिपाही अफ़सरों के पास, झंडे के निकट, शेष रह गए। मेमों की गाड़ियाँ करनाल को चलीं। अफ़सरों को सिपाहियों ने यह सलाह दी कि तत्काल भाग जाना चाहिए, बल्कि उन्हें ज़बर्दस्ती भगा दिया, क्योंकि यहाँ भी विद्रोहियों के आने का भय था। यह संध्या का समय था, अँधेरा फैल रहा था कि बंदूक़ों की आवाज़ें आनी शुरू हुईं, और छावनी के बहुतेरे बँगलों में आग लग गई, जिसकी रोशनी दूर-दूर तक पहुँच रही थी। अब सिवा भागने के कोई उपाय बचने का न था। जो अफ़सर वहाँ बाक़ी थे, उन्होंने भी दुबारा प्रबंध करना व्यर्थ समझकर जगह छोड़ दी। क्योंकि जो क्षण व्यतीत होता था, भयानक होता जाता था। निदान, वहाँ से भागे, और रात-भर जंगलों में फिरते रहे। कभी थककर धरती पर लेट जाते थे कि

शायद नींद आ जाय। कभी जान के भय से उठ बैठते थे। अभिप्राय यह कि किसी तरह रात काटी। प्रातःकाल विद्रोही सिपाही इनके चारो तरफ़ मँडलाते दृष्टि पड़े। किंतु धन्यवाद है ईश्वर का कि उन्हें उस गुप्त स्थान का पता न लगा, जहाँ ये लोग थे। जब कोई दृष्टि न पड़ा, तब लाचार हो खोज के लिये सिपाही आगे बढ़ गए। ये अफ़सर जहाँ ठहरे थे, उसके इर्द-गिर्द के लोगों के बहुत आभारी हुए, क्योंकि गाँववालों ने इन्हें बहुत सहायता पहुँचाई थी। किसी ने खाना खिलाया, किसी ने अपने घर में छिपा रक्खा। रात-भर जो लोग अलग रहे थे, आ मिले। गाँववालों ने उन अँगरेज़ों को, जिनकी रक्षा का वचन दिया था, यमुना के एक नाले को पार कराके जंगल में एक निरापद् स्थान पर छिपा दिया, और तीसरे पहर आकर सूचना दी कि अँगरेज़ों का एक दल, जिसमें मेमें भी हैं, निकट ही कहीं ठहरा है। यह दल वह था, जो कश्मीरी दरवाज़े से भागा था, और जब वहाँ शांति न देखी, तो मेमों को तोप की पेटी पर सवार कराकर छावनी भेजा था। विद्रोहियों ने उन्हें रास्ते में लूट लिया था, बल्कि इन पर गोली भी चलाई थी। इसके बाद ये लोग खंदक में उतरकर दूसरी तरफ़ से चढ़कर भाग गए थे। इन्हीं में से एक मेम के कंधे में गोली का घाव भी लगा था। निदान, वहाँ से भागकर तमाम रात यह दल भी हैरान और परेशान घूमता रहा। कई दफ़े सिपाहियों के हाथों से कठिनाई से बचा। कभी-कभी तो

विद्रोही सिपाही इन लोगों की तलाश में एक गोली की मार तक पहुँच गए थे, किंतु ईश्वर की कृपा से ये उन आततायियों के हाथ न लगे।

अब दोनो दल इकट्ठे होकर चले। परस्पर मिलने से धैर्य भी बँधा। अब आदमी भी अधिक हो गए थे। वे दो या तीन मील तक यमुना के किनारे-किनारे चलते रहे। इसके बाद एक नाले पर पहुँचे, जिसे पार करना बहुत कठिन था, क्योंकि वह गर्दन तक गहरा था, और इस ज़ोर से बहता था कि पाँव उखड़े जाते थे। निदान, थोड़ी दूर तक वे सब बहते चले गए। अंत में किसी तरह पैर जमाकर दूसरे किनारे तक पहुँचे।

अब संध्या हो गई थी, और नाले में घुसने के कारण बड़ी सर्दी लग रही थी। दूसरी सुबह को गाँववाले फिर इनके मित्र बने, और एक स्थान पर, जहाँ बहुत-से पेड़ थे, जाकर ठहराया। पर थोड़ी देर पीछे इनसे कहा, यहाँ रहना ठीक नहीं, क्योंकि विद्रोही सवारों की टुकड़ी इनके पीछे लगी हुई है। यहाँ से चलकर गूजरों के एक झुंड के हाथ में पड़ गए, जिनके निकृष्ट विचार शीघ्र ही प्रकट हो गए। चूँकि इनकी बंदूकें आदि पानी से भीग गई थीं, इसलिये गूजरों का सामना करना व्यर्थ जान पड़ा। गूजरों ने बड़ी बेहूदगियाँ कीं, और बड़ी निर्दयता के साथ तमाम हथियार और असबाब छीनकर तथा पहनने के कपड़े तक उतरवाकर लंबे पड़े। गूजर कमबख्त इनकी जान भी न छोड़ते, मगर एक साधु ने समझा-बुझाकर

इनकी जान बचाई। अब इनके पास कपड़े तक न थे। इसी दशा में, धूप की गर्मी में, जलते-भुनते शाम को एक गाँव में पहुँचे। यह गाँव ब्राह्मणों का था। इसमें एक फ़क़ीर के तकिए पर जा पड़े, और तीन दिन तक वहाँ ठहरे रहे। यहाँ उन्हें अपने रक्षकों द्वारा बहुत आराम मिला। उन लोगों ने बहुत सेवा-सुश्रूषा की। यहाँ तक कि एक जर्राह भी ज़ख्मों के इलाज को दिया, और जो दवा गाँव में मिल सकती थी, इकट्ठी की। यहाँ से एक दूसरे गाँव में उसके ज़मींदार की इच्छानुसार चले गए। यह ज़मींदार जर्मन था। वहाँ उनको यहाँ से भी ज्यादा आराम मिला। रहने के लिये मकान और खाने-कपड़े का अच्छी तरह प्रबंध कर दिया गया। इस रात को अधिक आशा बँधी, क्योंकि मेरठ से सवारों का एक रिसाला, जो चिट्ठी भेजकर मँगाया गया था, आ गया। ज़मींदार ने सवारियों का प्रबंध कर दिया, और आठवें दिन ये मेरठ पहुँच गए।

छठी कथा

डॉक्टर बालफोर साहब देहली से अपने भागने का हाल इस प्रकार कहते हैं—जब यह निश्चय हो गया कि शहर देहली छोड़ देना चाहिए, तो लैवास साहब ने अपनी बग्घी मुझे दी। मैंने अपनी बहन मिस स्मिथ को अपने पास बिठाया, और रास्ते से लेफ़्टिनेंट टामस इंजिनियर और मेम डानिश मय फ़्रेजर साहब के बच्चे के, जो इस वक़्त उनकी गोद में था, सबको बग्घी में बिठाकर करनाल की तरफ़ चल दिए। लेफ़्टिनेंट टामस ने कहा—यह उत्तम होगा कि नहर को उतरकर उस थाने पर चलें, जो रास्ते में है। वहाँ पहुँचकर जिधर की सलाह होगी, चल देंगे। निदान, हमने ऐसा ही किया, और छोटे थाने तक पहुँचे। दूसरे दिन प्रातःकाल हम चलने की सलाह कर ही रहे थे कि ओहद का ज़मींदार, जो जाट था, हमारे पास आया, और कहा कि हमने देहली के क़त्ल और गड़बड़ का हाल सुना है। अगर तुम चाहो, तो हम तुम्हें रक्षा में रख सकते हैं। मैंने सबको सलाह दी कि इसको स्वीकार करना चाहिए। निदान, रात को हम सब उसके साथ गाँव में गए, और वहाँ उसने हमको ४-५ दिन तक रक्खा, और बेहद ख़ातिर की।

अंत में जब किसी फ़ौज के आने की ख़बर न सुनी, तो उसने हमको राय दी कि नहर के किनारे-किनारे करनाल चलना उचित है। निदान, वे रास्ता बताते चले, और गाँव के विद्रोहियों से भी हमारी रक्षा का प्रबंध किया। और, इस क़दर हमारा आतिथ्य किया कि हम कभी बदला न दे सकेंगे। अंततः हम सकुशल करनाल पहुँच गए। नवाब लेफ़्टिनेंट गवर्नर बहादुर यह सुनकर बहुत प्रसन्न होंगे कि देश का यह भाग, जिसमें से हम गुज़र रहे थे, इसके ज्यादातर आदमी सरकार के भक्त थे, और ऐसे कड़े विद्रोह में भी राजभक्त रहे हैं। केवल गूजरों की क़ौम विद्रोह करती और गड़बड़ मचाती रही थी, जो बड़ी सड़क के निकट रहते थे।

सातवीं कथा

एक मेम साहब, जिनका ज़िक्र डॉ० वेलफ़ोर साहब की चिट्ठी में आ चुका है, अपने भागने का हाल इस प्रकार बयान करती हैं—

११ मई को प्रातःकाल मैं एक मित्र से मिलने, जो मेग़ज़ीन के पास रहते थे, गई। जब पहलेपहल यह ख़बर सुनी कि विद्रोहियों का दल मेरठ से आ रहा है, तो मुझे और दूसरी मेमों को यह सलाह दी गई कि वे मेग़ज़ीन में चली जायँ, मगर मैं वहाँ न गई, बल्कि अपनी माता के घर में, जो निकट था, चली गई, और उनसे इस विद्रोह का हाल कहा। नौकरों से कहा कि इस बात की ठीक-ठीक ख़बर लाओ, पर उस समय सबने कहा, यहाँ कुछ भय नहीं, क्योंकि देहली की रक्षा ठीक-ठीक हो रही है। और भी कई स्त्रियाँ इकट्ठी हो गईं। आधा घंटा ही बीता था कि नौकर चिल्लाने लगा कि विद्रोही आ गए, और मकानों को लूट रहे हैं। वे गिर्जाघर तक पहुँच गए हैं। चूँकि गिर्जाघर हमारी कोठी के अहाते से निकट था, इसलिये भागना भी असंभव हो गया। हमारे नौकरों ने हमें सलाह दी कि नौकरों के मकान में जाकर छिप रहें। तब हम नौकरों के घरों में छिप रहीं।

इसके थोड़ी देर बाद २०० सवार अहाते के भीतर आ गए, और उसी मकान के पास खड़े हुए, जिसमें हम सब छिपे थे। नौकरों से पूछा कि साहब और मेम लोग कहाँ हैं। तुम अपनी जान का भय न करो। हम तुममें से किसी को न मारेंगे, परंतु हमारा विचार है कि सब ईसाइयों को, जो दिल्ली में हैं, मार डालें। नौकरों ने कहा, सब भाग गए। हमको मालूम नहीं, कहाँ गए। अगर तुमको ख़याल हो कि बँगले में होंगे, तो स्वयं जाकर देख लो। इस जवाब से उन्हें कुछ विश्वास हो गया, और वे बाहर जाकर ढूँढ़-ढाँढ़ करने लगे।

थोड़ी देर बाद ७४ नं० रेजिमेंट के ६ सिपाही और आ गए। इनको वह मकान, जहाँ हम सब छिपी थीं, मालूम हो गया। वे ख़ूब हँसे, और क़हक़हा लगाने लगे। और, बंदूक़ें दिखाकर कहा, हम तुम्हें मार डालेंगे। हमने बहुत मिन्नत व ख़ुशामद से कहा कि हमें मत मारो। इस पर उन्होंने कहा, अच्छा, बाहर आओ, और हमारे साथ चलो, फिर देखना, हम क्या करते हैं। हम बाहर निकलकर उनके साथ हो लीं। वे सब हमको गारद में ले गए, और अफ़सरों की लाशें दिखाकर हँसकर कहने लगे—देखो, ये सब इसलिये मारे गए हैं कि कमांडर इन चीफ़ साहब ने हमारे मज़हब को ख़राब करने का इरादा किया था।

इसके बाद अफ़सरों ने देखा, हम नीचे सिपाहियों के

पास खड़ी हैं, तो वे जल्दी से दौड़कर हमारे पास आ गए, और सिपाहियों को हटाकर हमसे कहा, ऊपर जाओ। हम सब वहाँ गईं, और देखा, कई अफ़सर मौजूद हैं। वहाँ हम १० बजे तक भूखी-प्यासी रहीं।

मेजर एबट साहब ने झंडेवाले बुर्ज पर कहला भेजा कि तोप की पेटियाँ भेज दो, जिससे उन पर मेमों को सवार कराके अपने सिपाहियों की रक्षा में बुर्ज तक पहुँचा दें, क्योंकि यहाँ का कुछ भरोसा नहीं, और बुर्ज इससे अधिक रक्षित स्थान है। थोड़ी देर में पेटियाँ मय तोपों के आईं। उनके साथ ३८ नं० रेजिमेंट के कुछ सिपाही थे। मेजर एबट साहब हम सबको उन पर सवार कराकर ख़ुद अपनी कंपनी लेकर बढ़े, और आज्ञा दी कि पेटियाँ उनके साथ आवें। ३८ नं० रेजिमेंट के सिपाही उस समय तक चुप खड़े रहे, जब तक कि मेजर साहब कश्मीरी दरवाज़े से बाहर नहीं चले गए। पर जब वे बाहर चले गए, तब दरवाज़ा फ़ौरन् बंद कर लिया, और हमसे कहा कि अगर तुम अभी इस पर से नहीं उतरतीं, तो हम तुम सबको मार डालेंगे। यह सुनते ही हम पेटियों पर से उतर आईं, मगर मेरी बहन न उतर सकी, क्योंकि उसकी गोद में बच्चा था। उसने सिपाहियों से कहा, ज़रा ठहरो। पर जब उससे फिर उतरने को कहा, तो उसने बच्चे को मेरी गोद में डाल दिया, और आप झट कूद पड़ी।

इस बीच में ५४ नं० रेजिमेंट का एक सिपाही आ गया, और

मेरी बाँह पकड़कर कहा, अगर ज़िंदगी चाहती हो, तो मेरे साथ चलो। और, ज़बरदस्ती एक खिड़की के रास्ते से सदर बाज़ार ले गया। रास्ते में मैंने बंदूक़ों की आवाज़ें सुनीं। पूछने पर मालूम हुआ कि सिपाही उन अफ़सरों को, जो भागकर जाना चाहते हैं, मार रहे हैं। कुछ अफ़सर मर भी चुके हैं।

मेरा साथी भी मुझे कप्तान बड़े साहब के बँगले पर ले गया, और मुझसे कहा कि यहाँ और एक मेम हैं, वह तुम्हारी ख़बरदारी रक्खेंगी। पर पीछे मालूम हुआ कि वह भी झंडे-वाले बुर्ज पर चली गईं। तब मैंने कहा, मुझे भी वहीं पहुँचा दो। बहुधा सिपाही मुझे देख-देखकर हँसते थे, पर एक ने मुझसे कहा, चलो, मैं तुम्हें पहुँचा दूँ। उसने अपना वचन पूरा किया।

मैं बुर्ज में १० मिनट ही ठहरी हूँगी कि भागने का विचार पक्का हो गया। तमाम सिपाही विद्रोही हो गए थे, और उनमें से कोई अपने अफ़सर की आज्ञा न मानता था। निदान, जिसके जिधर सींग समाए, चला गया। डॉ० बालफ़ोर साहब ने मुझ पर रहम किया। मुझे अपनी गाड़ी में जगह दी, और जितना शीघ्र हो सका, हम सड़क छोड़कर नहर के किनारे-किनारे भागीं। २५ मील तक भागती चली गईं। २५ मील पर एक मुक़ाम किया। एक घंटे तक आराम करके फिर बढ़ी, और एक चौकी पर पहुँची, जो उस स्थान से ५ मील पर थी। जितनी रात बाक़ी रह गई थी, मैदान में काटी।

इस स्थान से निकट एक गाँव था। यहाँ से नहर का एक ठेकेदार आया, और कहा, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।

प्रातःकाल उसने हमें दूर ले जाकर एक बाग़ में रक्खा, और कहा, दिन को यहाँ रहा करो। रात को घर में ले जाता था। वहाँ हम कोठे पर रात काटती थीं। ६ दिन हम वहाँ रहीं। ६ दिन बाद उसके साथी गँवारों ने उससे कहा कि इन्होंने तुझे बहुत रुपया दिया होगा। उसमें से हमको भी हिस्सा दे, नहीं तो रात को हम इन सबको मार डालेंगे। हमारे रक्षक ने यह बात हमसे कही, और लाचार हम लोग कर्नाल चल दिए। वह भी साथ गया। कमांडर इन चीफ़ ने इसे एक हज़ार रुपया इनाम दिया। जो लड़का मैं गोद में लाई थी, वह दो दिन में मर गया। यह भी सुना कि मेरी माता भी इस कष्ट में मर गईं।

वह दल, जिसे हमने पीछे छोड़ा था, जिसमें मेरी बहन थी, उसकी तलाश में विद्रोही फिर रहे थे। पर वे ईश्वर की कृपा से इस प्रकार बच गए कि कभी झाड़ियों में छिपते थे, कभी झाड़ियों में बैठे-बैठे और लेटे-लेटे चलते थे। काँटे जो शरीर में चुभ गए थे, उनसे ख़ून जारी था।

आठवीं कथा.

डॉ० डेविड साहब की मेम ने भी अपनी विपत्तियों का हाल प्रकाशित किया था, जो देहली से कर्नाल तक भागने में उन्हें झेलनी पड़ी थीं।

डॉ० डेविड जब घायल हो गए, तो मैं पैदल मिलने को दौड़ी। मैंने उन्हें पहले ही कहला भेजा कि पहाड़ी के बुर्ज पर, जो एक सुरक्षित स्थान है, चले आवें। मैपल साहब की स्त्री इस विपत्ति में मेरे साथ थी। एक मित्र की कृपा से उनको बग्घी पर जगह मिली, मैं भी उनके साथ सवार हो गई। जब मैं डेविड साहब के पास पहुँची, तो वहाँ एक अस्पताल की डोली रक्खी हुई थी। मैंने इस विचार से कि डोली में साहब को आराम मिलेगा, और वह अच्छी तरह सफ़र कर सकेंगे, डोली में सवार कराकर साथ लिया। थोड़ी दूर गए होंगे कि कहारों ने जाने से इनकार कर दिया। यहाँ से पालकी-गाड़ी में, जो उनके साथ आई थी, सवार कराकर कर्नाल भेजा। और, मेजर पिटरसन तथा मेपल को यहाँ से रुख़सत किया। अब हम सब पीछे परेट से गुज़रे। रास्ते में तीन बार डॉ० साहब की सवारी बदलनी पड़ी, और इसमें देर लग गई। इस कारण दूसरी स्त्रियों और अँगरेज़ों से हम पीछे रह गए। इन सबके बाद हम दिल्ली से चले थे। हम केवल दस मील ही चल पाए

थे कि देहाती आ गए, और हमें रोकना चाहा। हमारे साईस ने कहा कि अगर आगे जाओगी, तो मारी जाओगी, क्योंकि देहाती लोग रास्ते में आपकी प्रतीक्षा में खड़े हैं। यहाँ भी हमको कठिनाई दिखाई पड़ती थी, क्योंकि हमारे घोड़े उन्होंने पकड़ लिए थे, और नंगी तलवारें साईस के सिर पर तनी हुई थीं। आगे का भी भय था। ख़ैर, इनसे तो किसी तरह बच-गए, पर अब सोचा कि कंपनी बाग़ को लौट चलें, और वहाँ कल तक छिपी रहें। विवश हो यही किया। मालियों ने हमें रक्षा में लेने का वचन भी दिया। बड़ी देर बाद एक दल लाठियाँ लेकर हमारे पास आया, और कहा, जो कुछ तुम्हारे पास है, दे दो। सामना करना व्यर्थ था, क्योंकि हम केवल दो अबला स्त्रियाँ थीं, और वह डाकुओं का पूरा दल-का-दल था। डॉक्टर साहब के ऐसा गहरा घाव लगा था कि वह बोल भी नहीं सकते थे।

हम दोनो के पास जेवर और जवाहरात का एक-एक संदूक़ था। इसके सिवा १००) नक़द भी थे, जिसको बचाने के विचार से साथ लाए थे। अब यह विचार व्यर्थ था। उन्होंने सब छीन लिया। इसके सिवा मेपल साहब की स्त्री का गाउन, टोपी, कपड़े और दो रक्त-रंजित चादरें भी उतरवा लीं। बग्घी भी तोड़ डाली, और घोड़ों पर सवार होकर चल दिए। उनके बाद भी कई लुटेरे आए, और तब तक पीछा न छोड़ा, जब तक हमें बिलकुल नंगा न कर दिया।

अब हमारे पास एक पैसा भी न बचा। रात को लगभग एक बजे मैं और मेरी साथी स्त्री डॉक्टर साहब को एक पेड़ के नीचे छोड़कर किसी गाँव की तलाश में निकलीं। बड़ी खोज के बाद एक ज़मींदार हमें अपने साथ ले गया। रहने को मकान और खाने को दूध-रोटी दी। उस दिन शाम को हम कर्नाल चल दिए। इसी तरह रात-ही-रात में सात-सात मील हम किसी तरह चलते थे, क्योंकि हमारे साथ एक घायल भी था। गाँव-गाँव से रोटी माँगकर खाते और धरती पर सो रहते थे। कहीं-कहीं लोग दया करते थे, कहीं बुरी तरह दुख देते और ताना देते थे। यहाँ तक कि कड़ी धूप में भी कोई छाया में बैठने न देता था। इसी तरह हमने ६ दिन किसी तरह कष्ट-पूर्वक काटे। दिन को, धूप के समय किसी वृक्ष या पुल के नीचे, रहते थे। सदा जान के लाले पड़े रहते थे। पानी भी न मिलता था। पर इस ख़बर से एक प्रकार से धैर्य बँधता था कि बादशाह के सिपाहियों के हाथ से शायद बच जायँगे।

छठे दिन बालगढ़ में पहुँचे। यह गाँव रानी मंगलादेवी का है। यहाँ रानी साहबा ने हमारी बहुत सेवा की, और रक्षा का वचन दिया। पर दूसरे दिन ये आशाएँ जाती रहीं। क्योंकि रानी के आदमी हमारे साथ मेहरबानी देखकर नाराज़ हो गए, और रानी को धमकाने लगे कि यदि तुम इनको यहाँ से न हटाओगी, तो हम तुम्हारा गाँव लूट लेंगे।

यह बात हमारे लिये बहुत ही शोक-प्रद और दुःखद थी, किंतु कोई इलाज न था। लाचार यह तजवीज़ हुई कि रात को यहाँ से चल देना चाहिए। इस बीच में संतोषदायक एक और बात पैदा हुई कि दैव-योग से मेजर पिटरसन साहब पैदल, घायल, लुंगी बाँधे आ पहुँचे। मेजर साहब तमाम रास्ते हमारा पता लगाते चले आते थे। यह मुलाक़ात यद्यपि बहुत धैर्यप्रद थी, पर शोक-पूर्ण भी कम न थी। क्योंकि हम-ऐसे सम्मानित पुरुषों के पास पहनने को कपड़े तक न रहे—हिंदोस्तानी कपड़ों में दिन काटे। दिन छिपने के पीछे हम गाँव से निकाले गए, और सड़क का रास्ता छोड़कर दो-तीन गाँव तय किए। इसी चिंता व घबराहट में हम इतना थक गए थे कि अंत में बड़ी अनुनय से एक जमींदार से कहा कि हमको कहीं सुस्ताने दो, और कुछ खाने को ला दो। कल यहाँ से चले जायँगे। उसने हमारी बड़ी सेवा की। खाना भी खूब लाया। सोने को चारपाइयाँ भी दीं। दूसरे दिन सुबह ४ बजे हम वहाँ से चल दिए। एक गाँववाले ने एक चारपाई और कहार मेरे पति के लिये दिए। मेरी जूतियाँ घिस गई थीं। मेजर साहब की जूतियाँ भी लीतरे हो गई थीं। मैं इस दशा में गर्म रेत और काँटों में नंगे पाँव चलती थी। अंत में हम थाना कोली के निकट पहुँचे। यहाँ लोगों ने हमारे साथ अत्यंत कृपा और सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार किया। एक आदमी ने मेहरबान होकर हमारे वास्ते अत्यंत स्वादिष्ठ कढ़ी पकवाई, और दूसरी

सुबह को सवारी के वास्ते दो घोड़े, एक खच्चर और एक गधा तहसील कसौनी तक जाने को दिया। वहाँ पहुँचकर हमें विश्वास हुआ—हम समझीं, अब हमारी रक्षा हो गई। दूसरे दिन कर्नाल से हमारे लिये शिकरम आई, और महाराजा पटियाले के सिपाही रक्षा के लिये साथ आए। हम सब वहाँ से चलकर ता० २० मई को कर्नाल पहुँचे। यहाँ पहुँचकर हम सीधे रगही साहब के मकान पर गए। और, सत्य बात तो यह है कि उन्होंने हम भिक्षुओं और शरणागतों के साथ वह व्यवहार किया, जो एक सच्चे ईसाई के लिये उचित है। एक सप्ताह से अधिक हम कर्नाल में रहे। इसके बाद फिर चले, और अंबाले पहुँचे, और वहाँ से डाक की गाड़ी पर कालका पहुँचे। रास्ते में बहुधा गाड़ी से उतरकर खुद गर्म रेत में गाड़ी खींचनी पड़ती थी। डॉ० साहब के ज़ख्म को भी हमने ११ दिन तक धोया और बाँधा। घाव इतना ख़राब और गहरा था कि गोली से दाँतों के जबड़े उड़ गए थे। ११ दिन बाद एक डॉक्टर ने उस घाव को देखा था।

हमारा भागना बहुत ख़राब रहा। हमने इस भाग-दौड़ में बड़े कष्ट पाए। और, अत्यंत कड़ी, ख़राब, बल्कि मनुष्यता से परे खोटी-खरी बातें सुननी पड़ीं। सब कुछ लुट गया। हमारे और मेपल साहब की मेम के पास जवाहरात के प्रकार की बहुत-सी चीज़ें थीं। कुछ हमने खुद ख़रीदी थीं, और

कुछ मित्रों द्वारा भेंट में मिली थीं। इन दुष्ट लुटेरों ने सभी लूट लीं। प्यास के मारे हम अधमरी रहती थीं। पानी ख़त्म हो जाने पर विवश हो झीलों और तालाबों का मैला और कीड़ों पड़ा पानी पीना पड़ता था। कुओं से खींचकर खारी पानी पीना पड़ता था। कर्नल इवली की डोली हमसे आगे-आगे जाती थी। पर वह कहाँ रख दी गई, हमें मालूम नहीं। उन्हें साथ रखना हमारी शक्ति से बाहर था। अन्यथा हम अवश्य उनको अपने साथ रख लेतीं, और उनको इस प्रकार एकाकी मरने के लिये न छोड़ जाते।

नवीं कथा

मोहनलाल, जिसने काबुल में सरकारी सेवा की थी, देहली में मौजूद था। जब वहाँ विद्रोह खड़ा हुआ, तो क़त्ल से बचकर उसने वलीदादख़ाँ के यहाँ शरण ली, पर वलीदादख़ाँ ने उसे बालागढ़ के क़िले में ४२ दिन तक क़ैद रक्खा। इसके बाद वह वहाँ से भागकर अगस्त के पहले हफ़्ते में मेरठ पहुँचा। वह अपना हाल एक ख़त में, जो हाजस साहब के बेटे के नाम लिखा था, इस तरह बयान करता है—

हाजस साहब शनिश्चर के दिन १० मई को प्रातःकाल दिल्ली पहुँच गए। हम दोनो मिलकर बहुत प्रसन्न हुए, और उन चीज़ों को भेजने का प्रबंध करने लगे, जो राजा साहब के लिये ख़रीदी थीं। शाम को मैं उन्हें अपनी गाड़ी में सवार कराकर शहर की बड़ी-बड़ी इमारतें दिखाने ले गया। रात हमने अत्यंत प्रसन्नता से काटी। तुम्हारी और हेनरी की शिक्षा के संबंध में चर्चा होती रही कि इतनी छोटी अवस्था में भी किस योग्यता से अपने दफ़्तर का काम करता है।

११ मई का अशुभ प्रभात प्रकट हुआ। रविवार के सवेरे तक शहर में हर तरह शांति थी, झगड़े का कोई भी चिह्न न था। कलकत्ते के अख़बार भी आए। एकाएक यह भयानक

समाचार सुनकर हम निराशा में डूब गए कि मेरठ के विद्रोही यहाँ भी आ पहुँचे, और मार-काट तथा ईसाई-घरों में आग लगा रहे हैं। सवारों के बाद पैदल भी आ गए, और देहली की फ़ौज भी इनसे मिलकर क़त्ल और रक्त-पात करने लगी। जब वह दिन याद आता है, तो मेरी शरीर काँप उठता है। लगभग २ बजे दिन के ४ सिपाही बंदूकों-सहित मेरे दरवाज़े के सामने आकर खड़े हुए। यद्यपि दरवाज़ा बंद था, पर उन्हें शहर के बदमाशों ने भड़काया था। इसलिये उन्होंने बकना शुरू कर दिया, और कहा कि यह मकान एक ईसाई का है। कल यहाँ एक फ़िरंगी आकर ठहरा है। हम मालिक-मकान और नए आगंतुक फ़िरंगी दोनो को मार डालेंगे। हमारे नौकरों और मुहल्लेवालों ने कहा कि यह घर किसी ईसाई का नहीं है, न इसमें कोई फ़िरंगी है। बहुत ख़ुशामद-दरामद करने और कुछ रुपया देने के बाद उस दिन उनसे पिंड छूटा।

जब तक झगड़ा होता रहा, और वह सिपाही चले न गए, तुम्हारे पिता और मैं एक तंग कोठरी में, जिसमें जलाने की लकड़ियाँ थीं, छिपे बैठे रहे। रात को हाजस साहब को तुम्हारे चचा के घर इस विचार से भिजवा दिया कि यदि वे सिपाही फिर आवें, और मकान के भीतर ज़बर्दस्ती घुस आवें, तो साहब को न पावें।

१२ मई को नगर के बदमाशों से विद्रोहियों ने मेरे विषय

में सरकारी राजभक्ति का हाल सुनकर फिर आक्रमण किया। पहले पास-पड़ोस की दूकानों को लूटा, और फिर ज़बर्दस्ती मेरे घर में घुस आए। सब माल-असबाब लूट लिया, और मुझे पकड़ लिया। कहा कि तू इँगलिस्तान जाने की वजह से हिंदू नहीं रहा, और अपनी लड़की को विलायत शिक्षा के लिये भेजने और हाजस साहब की रिश्तेदारी की वजह से तू मुसलमान भी नहीं। इसके सिवा तू सरकार का जासूस भी है। इसीलिये तुझे बड़ी भारी पेंशन भी मिलती है, अतः हम तुझे मार डालेंगे। यहाँ तक कि एक ने बंदूक़ की नाल मेरी छाती पर रख दी। पर स्त्रियों के अनुनय-विनय, रोने-धोने, ख़ुशामद करने और हिंदू-मुसलमान पड़ोसियों के समझाने-बुझाने से कुछ पिघल गए। इसी समय कोतवाल के उधर आ जाने से मैं उस समय बच गया। विद्रोहियों ने कहा, तहक़ीक़ात करने के पीछे मारेंगे।

इस घटना के पीछे मैं भाग गया, कभी कहीं रहता, कभी कहीं। हाजस साहब भी चचा के घर से मेरी ख़ाला के मकान में चले गए, और वहाँ कुछ दिन रहे। अब लोगों को संदेह हुआ कि हाजस साहब वहाँ छिपे हैं। तब सबकी सलाह हुई कि भाग्य-परीक्षा करके भागना चाहिए। क्योंकि वह इससे तो अच्छा है कि घर में गिरफ़्तार करके मार डाले जायँ।

रात के ८ बजे भेष बदलकर इस विचार से चले कि लाहौरी दरवाज़े से किसी तरह बाहर होकर कर्नाल चल दें। पर इनके

पथ-प्रदर्शक का कहना है कि दुर्भाग्य से विद्रोहियों ने उन्हें पहचानकर पकड़ लिया। बातचीत के बद भेद खुल गया कि वे भारतीय लिबास में अँगरेज़ हैं। अंत में हाजस साहब ने स्वीकार भी किया कि वे कौन हैं, और किस वास्ते किसके पास आए थे। इसी समय उक्त साहब महोदय ने मेरा नाम भी बता दिया। साहब को तो वहीं मार डाला, और अब मुझे ढूँढ़ने निकले।

मेरे कुछ मित्रों ने ख़िजर सुलतान शाहज़ादे से सिफ़ारिश करके आज्ञा ले ली कि मैं ताल्लुक़दार वलीदादख़ाँ के साथ चला जाऊँ। यह बालागढ़ का ताल्लुक़ेदार था—जो बुलंदशहर से २ मील के अंतर पर है। ख़ाँ साहब सरकार के पेंशन-याफ़्ता नमकहलाल व्यक्ति थे, और १० जून तक नमकहलाल रहे।

वलीदादख़ाँ के यहाँ की सवारियाँ भी दिल्ली से जा रही थीं। मैं भी इन्हीं के साथ एक अलहदा पालकी में बैठकर शहर से निकला। ख़ाँ साहब ने दिल्ली में मुझसे वादा किया था कि वह मुझे आगरे तक पहुँचा देंगे, तथा सदैव सरकार के हितैषी रहेंगे, पर कुछ स्थानों का कुप्रबंध और गड़बड़ी देखकर बेवक़ूफ़ पलट गया, और मुझे क़ैद कर लिया।

यद्यपि मैं अत्यंत परेशान और शोक-पूर्ण था, पर सदा छुटकारे की चिंता में रहता था। राव गुलाबसिंह सरकार का हितैषी और इज़्ज़तदार गूजर ताल्लुक़दार था। वह वलीदादख़ाँ

का भी मित्र था। मैंने उसे लिख भेजा कि आप मुझे अपने पास बुला लें। उन्होंने कृपा कर अपने दीवान को ख़ाँ साहब के पास भेजकर मुझे माँगा, पर उसने स्वीकार न किया। इसके बाद मैंने और एक मित्र को आगरे को लिखा कि तुम २० सिपाही नौकर रखकर बालागढ़ आओ, और मुझे चुपचाप छुड़ा ले जाओ। पर उनके पास रुपया न था, न उन्हें सिपाही मिले। इससे वह सहायता भी प्राप्त न हो सकी। अब कोई आशा न बची थी। केवल ईश्वर ही पर आशा थी, जिसने इस समय तक जान बचाई है, वही आगे भी रक्षा करेगा।

२९ जुलाई को थोड़ी-सी गोरा फ़ौज के सिपाही आए, और उक्त विद्रोही की फ़ौज को हापुड़ में हराया। इस हार से क़िले में इतना आतंक छा गया कि सब घबरा गए। मैं ३० तारीख़ को प्रातःकाल ही क़ैदख़ाने से निकलकर बुलंदशहर भाग गया।

कुछ दिन बाद लैप्ट साहब ने, जिनसे मेरा परिचय था, मेरे भागने का हाल सुनकर उक्त महोदय और वेनलाप साहब मजिस्ट्रेट, मेरठ ने एक कृपा-पत्र लिखकर और विलसन साहब के रिसाले के कुछ सवार मेरे लेने को भेजे। मेरठ में विलियम साहब ने मुझ पर बड़ी कृपा और अत्यंत ख़ातिर की। यह साहब बड़े सभ्य और दयालु अफ़सर हैं। उनकी आज्ञा के अनुसार मैंने क़िले बालागढ़ का नक़्शा और विद्रोहियों के हालात लिखकर उन्हें दिए।

दसवीं कथा

एक मेम—जो सिकंदर साहब के खानदान से हिंदोस्तानी पोशाक पहनकर मेरठ चली गई थीं—दिल्ली के विद्रोह का हाल इस प्रकार लिखती हैं—

"दरयागंज में जितने ईसाई रहते थे, वे सब विद्रोह के दिन एक कोठे पर जमा हुए, और तीन-चार दिन तक वहीं डटे रहे। जब सिपाहियों ने देखा कि बंदूक़ के ज़ोर से वे यहाँ से नहीं उतरेंगे, तब एक नौपनी तोप लाए। उसके एक गोले से सब-कंडक्टर स्टिल साहब मर गए। जब तक ये लोग कोठे पर रहे, खाने-पीने की कोई चीज़ इनके पास नहीं पहुँची। ग़रीब बेचारे छोटे-छोटे बच्चे भूख-प्यास से छटपटा रहे थे। इन दुष्ट निर्दयियों ने लड़कों से कहा, अगर तुम नीचे उतर आओ, तो हम तुम्हें खाना-पानी सब कुछ देंगे। पर जब वे नीचे उतरे, तब फ़ौरन् क़त्ल का संकेत किया, और सबका वध कर डाला। फिर थोड़ी देर बाद क़त्ले-आम शुरू हो गया। इस हंगामे में जो लोग क़त्ल हुए, उनमें से कुछ के नाम ये हैं—

मेगज़ीन के ३ कंडक्टर मय बाल-बच्चों के, मेसर्ज़ पराइस मय बाल-बच्चों और दो नवासों के, मेसर्ज़ रेली मय दो बच्चों के, आमूस साहब की मेम आदि।"

ग्यारहवीं कथा

चित्रकार रोड साहब अपने भागने और ६ हफ़्ते के सफ़र का हाल, जिस बीच में वह देहली से आगरे तक पहुँचे थे, इस तरह लिखते हैं—

मैं जीलोल साहब रेलवे इंजीनियर और एच्० स्पेंसर साहब और कमिंग साहब (ये भी रेलवे इंजीनियर थे) के बँगले पर रहता था। यह बहुत सज्जन, मिलनसार और अतिथि-सत्कार करनेवाले हैं। इनका बँगला देहली से २ मील दक्षिण में है। सुबह नौ बजे के लगभग हमने झगड़े की खबर सुनी। दस बजे दो घुड़-सवार बिना घोड़ों के हमारे दरवाज़े पर आए। ठीक १२ बजे घर लूटा, और पाँच अँगरेज़ वहीं मारे गए। छावनी और शहर के तमाम बँगले उस रोज़ दिन-भर जलते रहे। जिस दिन हमने नगर छोड़ा, दो बजे के लग-भग अत्यंत भयानक और शोक-प्रद समाचार सुन पड़े। हमने सावधानी को वास्तविक वीरता समझकर थोड़ा-सा आवश्यक सामान इकट्ठा किया, और बाबू को आज्ञा दी कि नौकरों को सामान के साथ भेज दे। इसके बाद हम भी चल दिए, और धीरे-धीरे पक्की सड़क के किनारे-किनारे चले। हुमायूँ के मक़बरे में १५० सवार भागे हुए

लोगों की गिरफ़्तारी के लिये ठहरे हुए थे। उनसे बचकर आगे बढ़े। चूँकि हज़ारों मज़दूर वहाँ काम कर रहे थे, इसलिये विद्रोहियों ने हमको नहीं देखा। जब हम बटलर साहब के बँगले पर पहुँचे, तो मालूम हुआ कि साहब अभी थोड़ी देर हुई, चले गए। कुछ देर हम वहाँ ठहरे। वहीं हमने मेगज़ीन का उड़ना देखा। इसके बाद बँगले से चले, और ४ मील पर बटलर साहब को जा लिया। वहाँ एक बँगला था। इसमें उतरे, खाना खाया, और फिर रवाना होकर फ़रीदाबाद, जो यहाँ से ६ मील था, पहुँच गए।

यहाँ हमने चाय पी, और बहुत होशियारी से रहे। आधी रात के पीछे बल्लभगढ़ का राजा हमारे पास आया, और कहा, ५० सवार तुम्हारी तलाश में आ रहे हैं। उचित है कि तुम अपने ख़िदमतगारों का लिबास पहनकर मेरे क़िले में आ जाओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। यह कहकर वह अपने क़िले में गया, जिससे वहाँ कोई झगड़ा खड़ा न हो जाय। वहाँ से उसने एक सवार हमें लेने भेजा। हम क़िले में पहुँचे। राजा साहब ने हमें एक मकान में छिपा दिया। हम पहुँचे ही थे कि वे ५० सवार भी आ पहुँचे। पर उसके नौकरों ने कह दिया कि साहब लोग आगे बढ़ गए। वे तो यह सुनकर आगे बढ़े, और हम एक नींद लेकर दूसरे गाँव की तरफ़ चले, जो बल्लभगढ़ से ६ मील के अंतर पर था। हमारी रक्षा के लिये राजा का एक रिसाला हमारे साथ था। इस गाँव में एक छोटे-से

मकान के कोठे पर ५ दिन तक रहे। ५ दिन बाद वहाँ से भी राजा साहब के भेजे हुए ऊँट पर राजा साहब के विश्वासी के साथ मथुरा चले। रास्ते में हरएक गाँव से बचते हुए चले। यहाँ तक कि एक गाँव में पहुँचे, जिसका नाम अर्वान था। ऊँट-वाला हमको सीधे वहीं ले गया। परंतु दैव-योग से रास्ता छकड़े से रुका हुआ था, इसलिये हम लौट आए। ४ ऊँट तो लौट आए, पर एक, जिस पर वीन साहब थे, पीछे रह गया। हम उनकी प्रतीक्षा में गाँव के बाहर ठहरे रहे। सशस्त्र गाँववाले हमारे चारो तरफ़ खड़े थे। इतने में बंदूक़ की दो आवाजें आईं। ये सुनते ही हम सब वहाँ से भागे। पहला ऊँट जिस पर लोल साहब सवार थे, वह तो बाहर निकल गया। दूसरा, जिस पर स्पेंसर साहब थे, गिर पड़ा, और उठ-कर भाग गया। हमारा ऊँट भी ज़मीन पर गिरा, और फिर न उठ सका। जो उसके पास जाता था, उसे काटने दौड़ता था। लाचार उसे वहीं छोड़ा। स्पेंसर साहब और कमिंग साहब तो रास्ता छोड़कर भागे, और बटलर साहब रास्ते पर भागते रहे। विद्रोहियों ने हमें दूर से मारना शुरू किया। चूँकि सुबह होनेवाली थी, इसलिये हम मुक़ाबला करने को सन्नद्ध हुए। उन्होंने हमें घेर लिया। अब बटलर साहब ने सुलह कर ली। विद्रोहियों ने कहा—यदि तुम अपनी बंदूक़ें दे दो, तो हम तुम्हें कष्ट न देंगे। इस वादे पर हमने अपनी बंदूक़ें उन्हें दे दीं। पर यह मामला

हो ही रहा था कि एक विद्रोही ने मेरे कंधे पर ज़ोर से लकड़ी मारी। मैंने भी लौटकर अपनी रायफ़ल का कुंदा उसके जड़ दिया। जब हम अपनी बंदूकें देकर गाँव वापस आते थे, उस समय बटलर साहब ने अपना पिस्तौल उस आदमी से छीनकर, जिसको उन्होंने दिया था, अपना रास्ता पकड़ा। इस बीच में एक आदमी ने मेरे सिर पर तलवार मारी। मैंने कहा, बस, जो कुछ मेरे पास है, ले लो। १५०) मेरे पास थे, वे दे दिए। इसके बँटवारे में परस्पर लड़ाई होने लगी। मैंने पीछे मुड़कर देखा, तो बटलर साहब रफ़ूचक्कर हो गए थे। और, कोई उनका पीछा न कर रहा था। इस बीच में एक आदमी दौड़कर आया, और बड़े ज़ोर से मेरे सिर पर तलवार मारी, जिसके सदमे से मैं ज़मीन पर गिर पड़ा। पर तलवार कुंद थी, ज़ख्म न आया। मैंने ज़मीन पर गिरकर दम साध लिया, और औंधे मुँह सीने के बल पड़ा रहा। उन्होंने मरा समझकर कपड़े, जूते, सिगरेट-बक्स सब कुछ ले लिया, और आपस में लड़ने-झगड़ने लगे। सिगरेट-बक्स में ३) रु० थे। उसी विषय में मैं लूँगा, मैं लूँगा होने लगा। असबाब बाँटने के बाद वे मेरे चारो ओर खड़े हुए, और थोड़ी देर कुछ मसिया-सा गाते रहे। कभी-कभी मुझे लातें भी मार देते थे। एक ने इस विचार से कि देखें मर गया या अभी ज़िंदा है, मेरी गर्दन पर पाँव रक्खा, और उठाकर ज़मीन पर पटक मारा। पर मैंने भी ऐसा दम साधा

कि उन्होंने मुर्दा समझ लिया। मैंने पत्थर की तरह अपना शरीर कड़ा कर लिया। एक आदमी ने फिर मेरी गर्दन के नीचे पैर डालकर मुझे सीधा किया, और मेरे सीने पर हाथ रक्खा। उस वक्त मैंने साँस लेना बिलकुल बंद कर दिया। जब उसका हाथ मेरे दिल पर आया, मैंने बिलकुल दम नहीं लिया। इसके बाद कुछ शोर हुआ, जिसका कारण मैं बिलकुल न समझ सका। थोड़ी देर बाद मैंने एक आँख चुपके से खोली, तो कोई न दिखाई दिया, तब मैं उठा। पर बहुत ख़ून निकल गया था। चक्कर आने लगे। पर किसी तरह भागा ही था कि सशस्त्र आदमियों का एक झुंड सामने दिखाई पड़ा। वे परस्पर कुछ बातचीत कर रहे थे। मुझे देखकर इशारे से उन्होंने कहा कि यहाँ से चले जाओ। इनमें से एक आदमी मेरे पास आया, और मेरी प्रार्थना से एक कुएँ पर मुझे ले गया। वहाँ मैंने पानी पिया। उसी आदमी ने मुझे एक सीधा और साफ़ रास्ता बताया, जिसमें झाड़-झंकाड़ और काँटे न थे। क्योंकि मेरे पाँव में जूते न थे। और, काँटेदार रास्ते में मेरा चलना बहुत कठिन था। रास्ता बताकर वह स्वयं भी मेरे साथ चला, और कहा कि आप अपने ख़ून भरे कपड़े दे दें, मैं इन्हें धुला दूँ। इस बहाने से उसने मेरी वास्कट, जिसमें अक़ीक़ के बटन और सोने की जंजीर थी, उतरवा ली, और चाहा कि मुझे मारे। मैंने उसे समझा दिया कि यद्यपि मैं घायल हूँ, किंतु अँगरेज़ हूँ। मैंने उसे जमीन पर दे मारा, और आगे

बढ़ा। परंतु धूप की तेज़ी के कारण मैं बेदम हो रहा था। मैंने क़मीज़ सर पर रक्खी, और इस तरह दो-एक मील चला था कि दो-तीन आदमी लठ लिए मेरे पास आए, और धमकाने लगे। मैंने कहा, मार डालोगे, तो भी कुछ न मिलेगा, क्योंकि मेरे पास कुछ नहीं है। पर यदि तुम मुझे बल्लभगढ़ पहुँचा दो, तो १००) दे सकता हूँ, और आगरे पहुँचा देने पर ३००) दूँगा। यह सुनकर उन्होंने थोड़ा-सा पानी पिलाया, और छोड़ दिया। इसके बाद एक अत्यंत भयंकर आदमी खेतों से दौड़ता और शोर करता मेरे पास आया। मैं उसे देखकर खड़ा हो गया। उसने मेरे सिर से क़मीज़ उतार ली। मारने को था कि मैंने हाथ उठाकर कहा कि मेरे पास एक कौड़ी नहीं। पर बल्लभगढ़ पहुँचाने के १००) और आगरे तक के ३००) दे सकता हूँ। उसे इस पर विश्वास न हुआ कि राजा बल्लभगढ़ हमारा दोस्त है। इस बीच में, और गाँववाले भी आए, और कहा, दो अँगरेज़ दूसरे गाँव में, जो यहाँ से निकट है, आए हुए हैं। उन्होंने मुझे पानी भी पिलाया, और उस गाँव में पहुँचा दिया। वहाँ स्पेंसर साहब और कमिंग साहब मौजूद थे। और, ईश्वर की दया से उन्हें रास्ते में कोई विद्रोही भी नहीं मिला था। इन दोनो से मिलकर मुझे बड़ी ढाढ़स बँधी। स्पेंसर साहब ने कृपा कर मेरे घाव धोए। दोनो आदमियों ने गाँव के नंबरदार से इक़रार किया कि यदि तुम हमें आगरा पहुँचा दोगे, तो फ़ी आदमी ५००) देंगे। बहुत

हुज्जत के बाद उसने इनकार कर दिया। पर इनकी बंदूकें और ३००) छीन लिए। उसी समय हमारे पास मिचल साहब की एक चिट्ठी पहुँची। उन्होंने हमें बुलाया था, और लिखा था, खत लानेवाले के साथ चले आओ। यह गाँव सरकार का राज-भक्त है। पूछने पर मालूम हुआ कि वह गाँव यहाँ से २ कोस है। वहाँ हम पहुँचे। शाम तक ठहरे। रक्षक ने हमें सलाह दी कि यहाँ से दूसरे गाँव को, जो यहाँ से ६ मील है, चलना चाहिए, क्योंकि वह गाँव बड़ा है, वहाँ के निवासी हमारी रक्षा भी कर सकते हैं। इसलिये हम वहाँ चले गए। वहाँ ६ दिन रहे। इस बीच में यद्यपि मेवातियों ने इस गाँव को बहुत डराया-धमकाया कि हम गाँव पर हमला करेंगे, पर उन्होंने कुछ परवा न की। तब हमें विश्वास हो गया कि यदि हम उस छोटे गाँव में रहते, तो अवश्य मारे जाते। इसके बाद हमें और ज्यादा संतोष हुआ कि फ़ोर्ड साहब मजिस्ट्रेट गुड़गाँवा ने होडल के मुक़ाम से भरतपुर की सेना का एक पेश गारद हमारी रक्षा और साथ के लिये भेजा, और हम वहाँ पहुँच गए। वहाँ हमें बहुत आराम मिला। वहाँ बहुत दिन रहे। देहली विजय होने की खबर की प्रतीक्षा रहती थी। इसी बीच में मथुरा में भी उपद्रव हो गया, और जो सिपाही हमारे साथ थे, विद्रोही हो गए, और हमसे कहा कि यहाँ से चले जाओ। तब हम २६ जून को हार्डी साहब के साथ आगरे चले गए।

मिचल साहब ने होडल से चलने से पूर्व राजा साहब से २००) नक़द और घोड़े लिए थे। पर सवारों के हिसाब से एक कम था। फिर भी राजा साहब की कृपा कम न थी। (इस राजा को दिल्ली फ़तह करने पर फाँसी दी गई।)

बारहवीं कथा

१६ अगस्त को मेसन साहब की स्त्री देहली के फ़ौजी कैंप में सवात-निवासी एक ग़ाज़ी के साथ आई। शहर से दो ग़ाज़ी उनके साथ चले थे, पर एक रास्ते में विद्रोहियों के हाथ फँस गया था। मेम साहब अफ़ग़ान लड़कों की शकल में भागी थीं। वह ग़दर के प्रारंभ अर्थात् ११ मई से १६ अगस्त तक, ३ महीने, क़ैद में रही थीं। इनका एक बच्चा इनकी गोद में गोली से मारा गया था। वही गोली ख़ुद इनको भी लगी थी। घायल होने पर दोनो ग़ाज़ियों ने इनकी रक्षा की थी।

फ़ौजी कैंप में दाख़िल होने से पहले एक रात किसी तरह मेम साहब अजमेरी दरवाज़े से बाहर निकलकर घास में छिप रहीं। प्रातःकाल ग़ाज़ियों में से एक को भेजा कि जाकर देखे कि अँगरेज़ी फ़ौज सब्ज़ी मंडी में है या नहीं। वह देखकर वापस गया, और सारा हाल कह सुनाया। मेम साहब सब हाल सुनकर वहाँ से चलीं, और यथाशक्ति तेज़ चलकर कैंप में आ गईं। रास्ते में शत्रु के संतरियों ने एक ग़ाज़ी को गोली से मार डाला। दूसरे ग़ाज़ी और मेम साहब का भी पीछा किया। मगर जब वह हमारी गोली के निशाने पर पहुँचे, तो विद्रोहियों ने फिर आगे क़दम नहीं रक्खा, और ग़ाज़ी व

मेम साहब ने सकुशल सब्ज़ी मंडी में पहुँचकर ईश्वर को धन्यवाद दिया।

मेम साहब बुरी हालत में थीं। उन्हें देखकर हमारे सिपाही रोने लगे। उनके कूले पर एक घाव था, और उनका अँगूठा बिल्कुल घिस गया था। क्योंकि क़ैद में उनके अँगूठे को बाँधकर एक जगह कस दिया था। हमारे सिपाहियों ने उनकी खातिर की। कोई पानी लाया, कोई शराब, कोई रोटी और कोई गोश्त। पर उन्होंने दुर्बलता के कारण न कुछ खाया न पिया। थोड़ी देर तक लोग इनके चारो तरफ़ जमा रहे, और तरह-तरह की बातें पूँछते रहे। यह तंग आ गईं। मगर फिर भी मेम साहब ने सबका संतोष-जनक उत्तर दिया। आख़िर कप्तान हेली साहब आ गए। उन्होंने एक डोली मँगवाकर, उसमें उन्हें सवार कराकर कैंप में भेज दिया। वहाँ इन्हें एक अलग डेरा दिया गया, और तमाम आवश्यक वस्तुएँ एकत्रित कर दी गईं। शहर से भागने के समय इनके पास एक पुराना मैला कपड़ा था, जिसको इन्होंने अपने शरीर पर लपेट लिया था। एक टुकड़ा और था, जो इनके सिर पर लिपटा हुआ था। न हाथों में दस्ताने और न पाँवों में साबित जूतियाँ, केवल एक फटी-पुरानी हिंदोस्तानी जूती थी। वास्तव में वह इससे ज्यादा ख़राब दशा में नहीं हो सकती थीं।

तेरहवीं कथा

जेम्स मोर्ली साहब, जिनकी एक हिंदोस्तानी नौकर की मदद और कृपा से जान बची थी, अपने भागने की आश्चर्यमय घटना यों बयान करते हैं—

मैं और मेरे मित्र विलियम क्लार्क साहब दोनो कश्मीरी दरवाजे के एक दुमंजिले मकान में रहते थे। हम दोनो का विवाह भी हो गया था, और तीन बच्चे भी थे। क्लार्क साहब के भी एक लड़का था, और इनकी स्त्री गर्भवती थी। ११ मई को सुबह ६ बजे के लगभग मैं द़फ्तर जाने को तैयार था कि बाजार में शोर हुआ। मेरे नौकर ने आकर कहा कि कुछ रेजिमेंटें अपने अँगरेज़ी अफ़सरों को मारकर मेरठ से यहाँ आ गई हैं। हमारी समझ में कुछ न आया कि अब क्या करना चाहिए। बग्घी भी वापस कर दी। हम दो-तीन घंटे मकान पर और ठहरे रहे कि इतने में एक और नौकर ने आकर कहा कि यहाँ भी विद्रोही अँगरेज़ों को क़त्ल कर रहे हैं। यह सुनकर मेरी स्त्री और बच्चों ने रोना शुरू किया। कुछ नौकर दरवाज़े पर जा खड़े हुए। इनमें से एक ने कहा कि चलो, मेरे मकान में छिप रहो। पर मेरा विचार था कि मैं बाहर जाकर देखूँ कि क्या हो रहा है। मैं

एक सोंटा हाथ में लेकर गली में गया। वहाँ कोई न था। मैं और आगे बढ़ा। वहाँ भी कोई न था। अंत में गली पार करके दूसरे कूचे में गया। वहाँ भी कोई न था। केवल एक बूढ़ा आदमी दूकान पर बैठा था। मैं थोड़ी देर वहाँ ठहरा, तो सीधे हाथ की तरफ़ एक दल नज़र आया। वह मुझसे दूर था, और सिर्फ़ शोर ही सुनाई पड़ता था। मैं इस विचार से कि वे मेरे ही मकान पर आवेंगे, वहीं थोड़ी देर खड़ा रहा, और उनको देखता रहा। इसके बाद पीछे से शोर सुनाई दिया। मुड़कर देखा, तो एक दल मेरे दरवाज़े में घुस रहा था। मुझे देखकर कुछ आदमियों को मेरी तरफ़ भेजा। यह देखकर मैं फ़ौरन् बाईं तरफ़ के रास्ते में घुस गया। यहाँ से एक रास्ता बहुत फेर से मेरे मकान की ओर भी जाता था। उस दरवाज़े पर कुछ स्त्रियाँ और एक या दो आदमी खड़े थे। पर उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा। वहाँ से भी आगे भागा। ज्यादा दूर न गया था कि दो आदमी और गली से भागते हुए निकले, और मेरी तरफ़ यह कहते हुए आए कि मारो फ़िरंगी को। इनमें से एक के हाथ में तलवार थी और दूसरे के पास लाठी। पास आने पर मैं भी ठहरा, और तलवारवाले के एक ऐसा सोंटा सिर पर मारा कि वह ज़मीन पर गिर गया। दूसरे ने मेरे सिर पर लाठी मारी। पर मैंने सिर झुका लिया—वह लाठी कंधे पर छूती हुई चली गई। मैंने जो अपनी लाठी घुमाई, तो उसकी रान पर इस ज़ोर से लगी

कि चीख मारकर गिर गया। इस बीच में लोग वहाँ जमा होने लगे। मैं वहाँ से भी भागकर एक व्यापारी की दूकान पर पहुँचा। वहाँ बहुत-सी गाड़ियाँ खड़ी थीं। एक गाड़ी की छत टूटी हुई ज़मीन पर पड़ी थी। उसमें मेरे लिये काफ़ी जगह थी। मैं उसमें घुसकर बैठ गया। मैंने चार-पाँच आदमियों को यह कहते सुना कि इधर ही को गया है। मैं मारे डर के ज़रा भी आराम से न बैठ सका। उनके जाने के कुछ देर बाद वहाँ कोई न था। अब मुझे अपने बाल-बच्चों और क्लार्क साहब की स्त्री का ख़याल आया। मैं अपने दिल में सोचता था कि क्या वे सब मारे गए। यह विचार आते ही मैंने मन में कहा, चाहे कुछ हो, मुझे घर जाना न चाहिए। इस विचार ने मुझे पागल बना दिया। अभी इसी सोच-विचार में पड़ा था कि दुबारा शोर-ग़ुल सुन पड़ा। और विद्रोहियों का एक बड़ा भारी दल गालियाँ बकता उधर से गुज़रा। इस बीच में दो-तीन औरतें घरों से निकलकर छत के पास आ खड़ी हुईं। उनकी गोद में एक बच्चा भी था। बच्चा उसके नीचे (छत को) झाँकने लगा, तो किसी ने कोठे से आवाज़ दी कि अंदर आकर दरवाज़ा बंद कर लो। वहाँ मैं देर तक छिपा रहा, क्योंकि यह बाज़ार बहुत चलता था। मैंने सोचा, इसमें हर जगह आदमी मिलेंगे। पर दुबारा मुझे अपने बच्चों का ख़याल आया, और मैंने फ़ैसला कर लिया—कुछ भी हो, मुझे घर चलना चाहिए। घर की ओर चला। मैं चला ही था कि एक स्त्री ने कहा, कौन है?

मैंने जवाब न दिया, और वहाँ से चल दिया। यह गली बीच शहर में न थी, बल्कि शहर की फ़सील के निकट थी। बनिए इसमें न रहते थे, बल्कि बंगाली रहते थे। जितने बदमाश थे, सभी शहर की लूट में लगे थे। मुझे इस रास्ते में केवल दो मनुष्य मिले। वे मुझे जानते थे। उन्होंने कहा—अपने को बचाओ। अंत में मैं मकान के पिछवाड़े तक पहुँच गया। यहाँ एक बाग़ था। मैं एक खिड़की से भीतर गया। उस समय चार बजे थे। क्योंकि मैं दिन-भर अपनी छत के नीचे छिपा रहा था। इसमें समय बीत गया। वहाँ भी मैंने बंदूकों की आवाज़ें सुनी थीं। और, साथ ही एक बहुत ज़ोर का धमाका और भूकंप-सा भी आया। बाद को मालूम हुआ कि मेगज़ीन उड़ाया गया था।

शिक्षा-प्रद दृश्य

निदान, मैं अपने बाग़ में आया, तो सन्नाटा-सा छाया हुआ था। मकान के निकट पहुँचा, तो कुर्सी, गिलास, रकाबी और किताबें टूटी-फूटी और अस्त-व्यस्त पड़ी थीं। कपड़ों के गट्ठर जल रहे थे। पहले जिधर नौकर रहते थे, उधर गए, मगर वहाँ कोई न था। गोशाला की तरफ़ कुछ रोने की-सी आवाज़ आई। जाकर देखा, तो हमारा पुराना धोबी, जिसने बीस बरस तक मेरे बाप की सेवा की थी, पड़ा है। मैंने उसका नाम लेकर आवाज़ दी, तो उसने आँख खोली, और देखकर रो-रोकर कहने लगा—साहब! उन्होंने सबको मार डाला। यह सुनते ही मैं बेहोश-सा हो गया। और मैं बैठ गया। धोबी से मैंने पानी माँगा। उसने अपने घर से लाकर दिया। पानी पीकर मैंने उससे पूछा—क्या और कैसे हुआ? पहले तो वह ख़ूब रोया। फिर कहा कि साहब, जब तुम चले गए, तो दोनो मेम साहब और बच्चे एक जगह भय-भीत होकर बैठ गए। क्योंकि गली-कूचों में बड़ा शोर हो रहा था, और बंदूक़ों की आवाज़ें भी आती थीं। यह हाल देखकर क्लार्क साहब ने अपनी शिकारी बंदूक़ निकाली, और उसको भरा। मैंने कहा, अगर आप कहें, तो दरवाज़ा

बंद कर लूँ। पर उन्होंने कहा, नहीं, हमें कुछ भय नहीं। इसके बाद एक बड़ा दल लाठियाँ, तलवारें और बर्छियाँ लेकर अहाते में आ गया। साहब बंदूक़ लिए ज़ीने में खड़े थे। उन्होंने पूछा, तुम क्यों आ रहे हो? और क्या चाहते हो? उन्होंने सिवा गालियों के कुछ जवाब न दिया। और कहा, हम हरएक फ़िरंगी को मारेंगे। साहब यह सुनकर भीतर चले गए, और दरवाज़ा बंद न किया। इनके पीछे वे सब भीतर घुस आए। नौकर सब भाग गए। सिर्फ़ मैं रह गया। जब वे सब भीतर घुस आए, तब क्लार्क साहब ने कहा, ये सब चीज़ें ले जाओ, पर हमको न मारो। लेकिन उन्होंने साहब को गाली देकर और उनकी मेम की ओर देखकर कहा, क्या यह तुम्हारी मेम है? यह कहकर ख़ूब हँसे। अब उन्होंने सब असबाब को तोड़ना-फोड़ना और लूटना शुरू किया। हमारी मेम साहब ने तीनों बच्चों को लेकर ग़ुसलख़ाने का दरवाज़ा बंद कर लिया था। क्लार्क साहब मेरे पीछे बंदूक़ लेकर खड़े हो गए। उन्होंने बंदूक़ देखी, तो कहा, यह हमें दे दो। उनमें से एक आदमी मेम साहब के पास गया, और उनके गालों को छूकर बेहूदा बकने लगा। क्लार्क साहब वह देखकर चिल्लाए, और कहा कि ओ सुअर! और उसे गोली से मार दिया। दूसरे को दूसरी गोली से ज़ख़्मी करके बंदूक़ की नाल से मारने लगे। यह देखकर मैंने समझा कि अब ये लोग सबको मार डालेंगे। मैं भागकर ग़ुसलख़ाने की तरफ़ गया कि मेम साहब को निकाल

ले जाऊँ, मगर वहाँ भी बहुत-से आदमी मौजूद थे। उन्होंने मुझे मारा और कहा कि भाग जाओ, वरना मार डालेंगे। मैं बाग़ में छिप गया। वहीं से मैंने पहले बड़ा शोर सुना, फिर देखा कि वे लोग घर को लूट रहे हैं। दरवाज़े के शीशे भी तोड़ डाले। फिर चले गए।

यह सुनकर थोड़ी देर तो मैं सन्नाटे में रहा। फिर धोबी से कहा कि चलो अंदर चलें। मकान में जाकर बाहर के कमरे में देखा कि प्रायः चीजें टूटी-फूटी पड़ी हैं। मेज़ें कुल्हाड़ियों से तोड़ी गई थीं, और सब चीजें फ़र्श पर बिखरी पड़ी थीं। मुरब्बे व अचार के ढेर लगे थे। तमाम बिस्कुट फैले पड़े थे। बरांडी आदि शराब की बोतलें टूटी पड़ी थीं, और उनकी बदबू फैल गई थी।

यह दृश्य मेरी आँखों में अब भी झूल रहा है। ऐसे अवसरों पर प्रत्येक पुरुष को जो निकृष्ट संदेह लगा रहता है, वही भयानक अंदेशा और ख़तरा मुझको भी था। इसी अंदेशे से मैं देर तक उस कमरे में रहा, और इधर-उधर देखता रहा। अंत में दिल को कड़ा करके दूसरे कमरे में गया। वहाँ जो कुछ दिखाई पड़ा, उसे देखने के लिये पत्थर का हृदय चाहिए। वहाँ पहुँचते ही मेरा हृदय भय और घृणा से भर गया। सामने जो दृष्टि पड़ी, तो क्लार्क साहब का बेटा दीवार पर एक मेख से लटका हुआ था। उसका सिर नीचे था और ख़ून का फ़ौवारा जारी था। अफ़सोस ! यह दर्दनाक और भयानक क़त्ल उन्होंने मा के सामने

किया होगा। यह भयंकर दृश्य देखकर मैंने अपनी आँखें बंद कर लीं, और मेरा शरीर थर-थर काँपने लगा। जब डरते-डरते दुबारा मैंने आँखें खोलीं, तो उससे अधिक रोमांचकारी दृश्य देखना पड़ा। क्लार्क साहब और उनकी मेम पास-पास पड़े थे। और, यह कहना मेरे लिये शक्य नहीं कि यह दृश्य कितना भयानक था। क्योंकि मैं पहले कह चुका हूँ कि क्लार्क साहब की मेम हामिला थीं, और प्रसव निकट ही था।

मैं चीख़ने की आवाज़ सुनकर तीसरे कमरे में गया। वहाँ देखा, ग़रीब धोबी हाथ मल-मलकर रो रहा है। वह ग़ुसल-ख़ाने के दर्वाज़े पर खड़ा था। मैं दौड़कर ग़ुसलख़ाने तक गया, पर अंदर न जा सका, क्योंकि वहाँ जो हाल था, वह दुश्मन को भी देखना नसीब न हो। मैं तो यह विचार भी मन में नहीं ला सकता कि क्लार्क साहब की तरह मैं अपनी पत्नी को देखूँ। मैं बदहवास होकर, दोनों हाथ घुटनों पर रखकर बैठ गया। मुझे उस समय रोना भी नहीं आया। ऐसा मालूम होता था कि दिल पर एक पहाड़ रक्खा हुआ है, जो आँखों तक आँसुओं को नहीं आने देता। मुझे मालूम नहीं कि मैं कितनी देर वहाँ बैठा रहा। आख़िर धोबी ने आकर कहा—इधर आदमी आते-जाते हैं, अब इधर रहना उचित नहीं। वह मुझे पकड़कर अपने घर ले गया। अब शाम हो गई थी, और अँधेरा फैल गया था। ख़याल हुआ, शायद नौकर वापस आवें। मगर मुझे अब किसी पर विश्वास न रहा था।

धोबी ने कहा, आज रात को अपने भाई के यहाँ ले जाऊँगा, जो शहर की दूसरी तरफ़ रहता है। और, कोई ऐसी युक्ति निकालूँगा कि तुम भी शहर से बाहर निकल जाओ। हम और आप अब दोनो कर्नाल चलेंगे। मैं उसके घर के भीतर जाकर लेट रहा, और वह दरवाज़े पर बैठा रहा। थोड़ी ही देर में बदमाश अंदर आए, और ख़ूब ज़ोर-ज़ोर से हँसने और चिल्लाने लगे, तथा खिड़की के रास्ते बाहर चले गए। मैंने ख़ुद सुना कि उनमें से एक आदमी ने कहा कि क्या ख़ूब तमाशा है।

अब मेरे नौकर भी वापस आ गए थे और इस घटना का ज़िक्र आपस में करने लगे। मुझे इसकी बहुत प्रसन्नता हुई कि उन्होंने मुझे मरा हुआ समझ लिया। एक ने कहा, मेम साहब और बच्चों का क़त्ल बड़ी बुरी बात हुई। अब रोज़गार कहाँ मिलेगा। मगर दूसरे ने फ़ौरन् जवाब दिया कि वे लोग काफ़िर थे। अब दिल्ली के शाह हमारी परवरिश करेंगे।

मैं आधी रात के बाद बहुत धीरे से बाग़ में गया, और धोबिन की कुर्ती पहन, ओढ़नी ओढ़ बाहर निकला, और ठिकाने पर पहुँचकर धोबी से मिला। वह मुझे साथ लेकर अपने भाई के मकान पर गया। रास्ते में हर जगह खलबली मची हुई थी। मेगज़ीन की तरफ़ से तेज़ आग की लपटें उठ रही थीं, और फ़सील के बाहर बंदूक़ें चल रही थीं। जब हम उसके भाई के मकान के निकट पहुँचे, तो धोबी ने कहा

कि तुम चुपचाप एक कोने में खड़े रहो, मैं भीतर जाकर देखूँ कि कौन-कौन हैं। यह कार्य मेरे लिये सौभाग्य-सूचक था, क्योंकि पीछे मालूम हुआ कि धोबी का भाई हमारे क़त्ल से खुश हुआ कि अब सब कपड़े उसी के पास रहेंगे। अगर मैं भीतर चला जाता, तो वह हरगिज़ हमारे बचाने की कोशिश न करता। मैं एक कोने में बड़ी देर तक खड़ा रहा। इधर से आदमी गुज़रते थे। अगर उन्हें ज़रा भी खबर हो जाती कि यह फ़िरंगी खड़ा है, तो न-जाने क्या-क्या अपमान सहने पड़ते। मैं तमाम उम्र शहर में रहा हूँ। मुझे बहुधा लोग जानते थे, इसलिये भय था कि कोई पहचान न ले। और, मेरी ओढ़नी की बेतरतीबी से कोई भाँप न जाय। इसी सोच-विचार में थोड़ी देर बैठा रहा। अब सुबह होने लगी। तब इस भय से कि अब पर्दा खुल जायगा, घबराया। अंत में धोबी निकला। उसके आगे-आगे एक बैल कपड़ों से लदा जा रहा था, पर वह मेरी तरफ़ न आया, बल्कि सामने एक दूसरी गली में चला गया। यह देखकर मुझे शोक हुआ कि देखो, यह भी मुझे छोड़ चला। जो भाग्य में होगा, वह होगा। परंतु जब उसकी सेवा और ईमानदारी का खयाल आया, तो दिल ने कहा कि यह इस कारण मेरी तरफ़ नहीं आया कि किसी को शक न हो। धोबी नज़र से ओझल हो गया। उस समय मैं उठा, और उसके पीछे हो लिया। वह आगे-आगे जाता था और मैं कुछ पीछे-पीछे।

यहाँ तक कि गली से बाहर निकल आए, जिसमें इसका भाई रहता था। इसके बाद वह ठहर गया, और इशारे से मुझे बुलाया। मैं पास गया, तो उसने कहा कि मेरा भाई बेईमान है। वह कभी तुमको न बचाता। और, मैं इस बहाने से निकल आया हूँ कि ऐसे वक़्त शहर में रहना ठीक नहीं, जब कि चारो तरफ़ फ़साद हो रहा है। मैं तो यहाँ नहीं रहूँगा, और गाँव जाता हूँ। अंत में हम दोनो शहर की फ़सील से बाहर निकल गए, और किसी ने हमको न रोका। हम सड़क के रास्ते तीन मील के लगभग गए होंगे कि धोबी ने सलाह दी कि अब कर्नाल जाना उचित है। कर्नाल का रास्ता वहाँ से दूर था, और हमें तमाम शहर का चक्कर काटकर वहाँ पहुँचना था। हम चले। रास्ते में बहुत-से आदमी मिले, पर कोई बोला नहीं। हम धीरे-धीरे चल रहे थे, और लगभग संध्या समय कर्नाल की सड़क पर पहुँचे। यहाँ मामला ही कुछ और था। जो लोग कर्नाल जाते थे, उनकी तलाशी ली जाती थी। हमारी भी बारी आई। विद्रोहियों ने हमें घेर लिया, और कहने लगे, यह बूढ़ा बड़ा होशियार है, लूट-खसोट का माल-टाल लिए जाता है। धोबी ने बिना विलंब कहा, मेरा बोझ देख लो। जब देख लिया और कुछ न पाया, तो हमें छोड़ दिया। तब मैंने धोबी से कहा कि भविष्य में यदि कोई दल विद्रोहियों का मिले, तो पहले ही से कहना चाहिए कि आओ, फ़िरंगियों को लूटो। और, इस लूट-पाट तथा क़त्ल का

खिक हँसी-मज़ाक़ से करना चाहिए। ऐसा ही किया गया। जिसकी वजह से फिर किसी ने हम पर संदेह नहीं किया।

दूसरे दिन हम बहुत सबेरे अँधेरे ही से बैल पर सवार होकर चल दिए। तीसरे दिन हम हिंदुओं के एक मंदिर के पास ठहरे, और एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गए। वहीं एक बड़ा तालाब था, और एक गोसाईं वहाँ आकर ठहर गया। उसके बाद धोबी खाना लेने गया। चूँकि हवा ठंडी थी, मैं सो गया। जब धोबी खाना लेकर वापस आया, और मुझे जगाया, तो उससे गुसाईं ने कहा—मैं जानता हूँ, यह फ़िरंगी है, हमने इसकी बहुत मिन्नत-खुशामद की, और कहा—हम पर रहम करो, तब उसने कहा—जाओ, मैं किसी को कष्ट नहीं देता।

अब मैं जनाने भेष से तंग आ गया था, और मुझे लज्जा आती थी। मैंने इस विचार से कि अब तो देहली से बहुत दूर निकल आए हैं, यहाँ कौन बोलेगा, भेष बदलकर धोबियों का मर्दाना लिबास पहन लिया। रास्ते में गाँववाले हमें गालियाँ और ताने देते थे, पर किसी ने मार-पीट न की।

रास्ते में मैंने देखा, एक लाश कटी-पिटी पड़ी है। और, जब मैंने देखा कि एक गिद्ध बोलता हुआ उस लाश पर मँडरा रहा है, तब मुझे बड़ा रंज हुआ। मैं उस लाश के पास गया, तो एक और जवान अँगरेज़ की लाश उसके पास पड़ी हुई थी, जिसकी आयु १६ वर्ष के लगभग थी। उसके

देखने से प्रतीत होता था कि इन्हें लाठियों से मारा गया है। मैंने उन्हें वहाँ दफ़न किया, मगर क़ब्र नाम-मात्र को ही थी। सिर्फ़ थोड़ा-सा रेत हटाकर लाश रख दी थी, और ऊपर रेत डाल दिया था। शोक!

रास्ते में मैंने सुना कि कुछ अँगरेज़ आगे जा रहे हैं। मैंने उनसे जा मिलने की कोशिश की, पर पहुँच न सका। विद्रोह से पहले ही मेरी टाँग में दर्द था। अब जो गर्मी और मिट्टी में पैदल चलना पड़ा, तो और ज्यादा हो गया था। बहुधा मुझसे चला नहीं जाता था। मैं पाँव घसीट-घसीटकर रखता था। पर चलना अवश्य था। अगर मौक़ा न होता, तो मैं कभी इतना कष्ट न उठाता, पर जान की रक्षा का विचार इतना बलवान् होता है कि चाहे कैसा ही कड़ा और कष्टदायक काम हो, मनुष्य उसके वास्ते सब कुछ झेल लेता है।

देहली से जाने के छ दिन बाद मैं कर्नाल पहुँचा। वहाँ मुझे आराम मिला। चूँकि अब जान की चिंता दूर हो गई थी, मुझे कुछ होश आने लगा। मगर इस चिंता से छुटकारा मिला, तो ज्वर ने आ दबाया। सरसाम तक हो गया। पर अब मुझे कुछ आराम है।

१२ मई को एक फ़क़ीर मेरठ में आया। उसके साथ एक अँगरेज़ का बच्चा था, जिसको उसने जमुना से डूबते हुए निकाला था। मेरठ आने तक इस बच्चे की वजह से ग़रीब पर कई जगह मार पड़ी, कष्ट भी दिया गया, पर इसने

बच्चे को नहीं दिया। मेरठ में आकर जब हाकिम के हवाले किया, तो उसे कृतज्ञता-स्वरूप १००) नक़द देने लगे। उसने लेने से इनकार कर दिया। पर यह कहा कि एक कुआँ उसके नाम से बनवा दिया जाय। इस प्रकार ऐसे भयानक अत्याचार किए गए। बच्चे माता के गर्भ से निकाले गए। छोटे-छोटे बच्चे तलवार और बर्छों की नोक पर उठाकर बाज़ारों में घुमाए गए। औरतों को नंगी करके अत्यंत अपमान से क़त्ल किया गया। इसी कारण से ईश्वर ने विद्रोह को विफल किया। और अँगरेज़ी शासन फिर स्थापित हो गया।